भारत की अवनति के सात कारण



स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती



विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

दो शब्द

एक समय था, भारत विश्वगुरु था, संसार का शिरमौर था, सोने की चिड़िया था। सारे संसार के लोग भारत के ऋषि-मुनियों के चरणों में बैठकर ज्ञान-विज्ञान की और चरित्र की शिक्षा लिया करते थे, परन्तु वह भारत पतन के गर्त में गिर गया।

इस पुस्तक में भारत के पतन के प्रमुख कारणों का तर्कपूर्ण, तथ्यात्मक, प्रमाणयुक्त विवेचन किया गया है। भारत को प्राचीन गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करना है तो इन कारणों का उन्मूलन करना होगा।

पुस्तक का ध्यानपूर्वक अवलोकन कीजिए, चिन्तन और मनन कीजिए, अन्धविश्वासों, पाखण्डों, कदाचारों को छोड़िए। मूर्त्तिपूजा करना, क़ब्रों पर मत्था रगड़ना और चादरें चढ़ाना बन्द करो। ईश्वर अवतार नहीं लेता, अपना उद्धार करने के लिए स्वयं लङ्गर-लङ्गोटे कसकर खड़े हो जाइए। अपना उद्धार करने का आपमें पूर्ण सामर्थ्य है। अपनी शक्तियों को पहचानिए और उन्हें जाग्रत् कीजिए। फलित ज्योतिष पाखण्ड है, इसे तिलाञ्जलि दीजिए। स्मरण रखिए—Man is his own star. मनुष्य स्वयं अपना देदीप्यमान नक्षत्र है।

अपनी मातृभूमि के गौरव को समझें—

जिसकी रज में लोट-पोटकर बड़े हुए हैं।
घुटनों के बल सरक-सरककर खड़े हुए हैं॥

ऐसी मातृभूमि के उत्थान में हम अपना सर्वस्व वार दें।

महर्षि दयानन्द के शब्दों में—

"जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

आओ, हम अपने भारतवर्ष को प्राचीन उत्कर्ष पर पहुँचाने का सङ्कल्प लें।

वेद-मन्दिर विदुषामनुचरः
इब्राहीमपुर, दिल्ली-३६ **—जगदीश्वरानन्द**
दूरभाष : ७२०२२४९

भारत की अवनति के सात कारण

भारतवर्ष के, नहीं-नहीं, संसार के आदि-सम्राट् महर्षि मनु ने हिमालय की चोटी पर खड़े होकर भारतवर्ष के गौरव की डिण्डिम-घोषणा करते हुए कहा था-

ऐतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

—मनु० २।२०

आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न अग्रजन्मा=ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर संसार के लोग अपने-अपने योग्य विद्या और चरित्रों की शिक्षा ग्रहण करें।

विष्णुपुराण में भारत की महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात्॥

—विष्णुपु० २।३।२४

देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं।

आधुनिक युग के महान् सुधारक, भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रबल समर्थक, आर्यसमाज के प्रवर्त्तक, आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतवर्ष के

गौरव और महिमा का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

"यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिए इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है, क्योंकि यही स्वर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिए सृष्टि के आदि में आर्यलोग इसी देश में आकर बसे। जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा करते हैं कि इस देश की संस्कृति और सभ्यता से ही हमारा कल्याण होगा। जो पारसमणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

–सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

फ्रेंच लेखक जैकालियट महोदय ने अपने ग्रन्थ Bible in India में भारतवर्ष को सभ्यता का हिंडोला कहा है। वे लिखते हैं–

"Soil of ancient India! cradle of humanity, hail! Hail venerable and efficient nurse whom centuries of brutal invasions have not yet burried under the dust of oblivion. Hail Fatherland of faith, of love, of poetry and of science, may we hail a revival of thy past in our Western future."

—M.L. Jacoliot, the Bible in India, P. 10

प्राचीन भारतभूमे! सभ्यता के हिंडोले! तुझे नमस्कार है। पूज्य मातृभूमे! तुझे शताब्दियों तक होनेवाले असभ्य, पाशविक एवं बर्बर आक्रमण भी विस्मृति के गढ़े में दबाने में असमर्थ रहे हैं, अतः तुझे प्रणाम! श्रद्धा, प्रेम, कला और विज्ञान के जनक भारतवर्ष! तेरा अभिवादन

है! प्रभु कृपा करें कि निकट भविष्य में हम तेरे प्राचीन गौरव का पश्चात्य जगत् में स्वागत कर सकें।

जिस समय ईसाई मैक्समूलर ने इस पुस्तक को पढ़ा तो वह जल-भुनकर राख हो गया। परिणामस्वरूप पुस्तक की आलोचना करते हुए उसने लिखा—"ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक महोदय भारतीय ब्राह्मणों के धोखे में आ गया है।"

महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के अध्ययन से मैक्समूलर के विचारों में भी परिवर्त्तन हुआ, उसके विचारों में एक क्रान्ति आई, तब जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने भारतवर्ष की गुरुता एवं महत्ता इन शब्दों में व्यक्त की—

"If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that Nature can bestow—**I should point to India**.

If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant—**I should point to India**.

And, if I were to ask myself from what literature we here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of the Greeks and Romans and of one Semetic race, the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact more truly human, *a*

life not for this life only, but a transfigured and eternal life—again **I should point to India.**"

—*India: What can it Teach us, P. 4*

"यदि मुझसे सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसे देश के सम्बन्ध में पूछा जाए, जिसे प्रकृति ने सर्वसाधनों से सम्पन्न बनाया हो, जो सौन्दर्य, शक्ति और सम्पत्ति से समलंकृत हो तो **मैं भारतवर्ष की ओर संकेत करूँगा।**

यदि मुझसे पूछा जाए कि किस आकाश के नीचे मानव-मस्तिष्क ने अपने मुख्यतम गुणों और शक्तियों का विकास किया, जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर सबसे अधिक गहराई से विचार किया और उनमें से कुछ के ऐसे समाधान ढूँढ निकाले, जिनकी ओर उन्हें भी ध्यान देना चाहिए जिन्होंने प्लेटो और काण्ट का अध्ययन किया है, तो **मैं भारतवर्ष की ओर इशारा करूँगा।**

और यदि मैं अपने-आप से पूछूँ—किस साहित्य का आश्रय लेकर हम यूरोपीय, जोकि बहुत कुछ केवल यूनानियों, रोमनों और सेमेटिक (यहूदी) जाति के विचारों के साथ पले हैं, वह सुधारक वस्तु प्राप्त कर सकते हैं, जिसके द्वारा हम अपने जीवन को अधिक पूर्ण, अधिक विस्तृत एवं व्यापक, अत्यन्त विश्वजनीन एवं उच्चतम मानवीय बना सकेंगे, जो जीवन न केवल इस लोक से सम्बन्धित हो, अपितु शाश्वत एवं दिव्य जीवन से सम्बद्ध हो, तो **मैं पुनः भारतवर्ष की ओर इंगित करूँगा।**"

भारतवर्ष को ज्ञान और धर्म का आदिस्रोत स्वीकार

करते हुए प्रो० हीरेन (Prof. Heeren) लिखते हैं–

"India is the source from which not only the rest of Asia but the whole Western world derived their knowledge and their religion."

—*Historical Researches. Vol. II P. 45*

भारतवर्ष ही वह स्रोत है, जिससे न केवल एशिया ने अपितु समस्त पाश्चात्य जगत् ने भी अपनी विद्या और धर्म प्राप्त किया।

मेजर डी० ग्राह्मपोल का कथन भी पठनीय है, वे लिखते हैं–

"भारत उस समय सभ्यता और विद्या के उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ था, जिस समय हमारे पूर्वज अभी वृक्षों की छाल के बने हुए कपड़े पहनकर अफ़्रातफ़्री में इधर-उधर भटक रहे थे।"

–माडर्न रिव्यू, जून १९३४

चैम्बर विश्वकोश में भारत का गौरव इन शब्दों में प्रकट किया गया है–

"India is the epitome of the whole world."

—*Chamber's Encyclopaedia P. 337*

भारत समस्त संसार का निचोड़ है।

भारतवर्ष की प्रशंसा में एल्फिन्स्टन महोदय लिखते हैं–

"इस (भारत) की प्राकृतिक छटा एकदम आँखों में बैठ जाती है और फिर सदा के लिए अपनी अमिट स्मृति हृदय में छोड़ जाती है।"

मुसलमान लेखक 'वस्साफ़' अपने इतिहसग्रन्थ 'तारीखे-वस्साफ' में लिखते हैं–

"सभी इतिहासवेत्ता यह मानते हैं कि भारतवर्ष भूमण्डल का एक अतीव रमणीय और चित्ताकर्षक देश है। इसकी पावन पुनीत मिट्टी के रजकण वायु से भी अधिक हल्के और पवित्र हैं और इसकी वायु की पवित्रता स्वयं पवित्रता से भी अधिक पवित्र है। इसके हृदयहारी मैदान स्वर्ग की स्मृति को जगानेवाले हैं।"

वे पुनः लिखते हैं–

"अगर दा'वा कुनम् कि जन्नत दर हिन्द अस्त। मुताज्जिब मशौ, चिह जन्नत बजाते खुद, मुक़ाबिल ऊ नेस्त।"

अर्थात् यदि मैं यह दावा करूँ कि स्वर्ग भारत में ही है तो तू आश्चर्य मत कर, क्योंकि स्वयं स्वर्ग भी भारत की समानता नहीं कर सकता।

"हज़रत मुहम्मद साहब भारतवर्ष की ओर मुख करके नमाज़ (ईश्वर-प्रार्थना) पढ़ा करते थे। एक दिन उनके किसी मित्र ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा–"मुझे भारतवर्ष की ओर से वहदानियत (एकेश्वरवाद) व रूहानियत (अध्यात्मवाद) के झोंके आते हैं।"

इसी बात को डॉ० इकबाल ने यूँ लिखा है–

वहदत की लय सुनी थी दुनिया ने जिस मकाँ[1] से।
मीरे अरब को आई ठण्डी हवा वहाँ से॥

जिस समय डॉ० इकबाल की आँखों पर पक्षपात का चश्मा नहीं चढ़ा था, जिस समय वह पाकिस्तान

१. स्थान,

के समर्थक नहीं थे, उस समय उन्होंने भारतवर्ष के सम्बन्ध में लिखा था—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुले हैं इसकी वो गुलिस्ताँ[1] हमारा॥

संसार में जितना ज्ञान और विज्ञान फैला वह सारा भारतवर्ष से ही गया। यह बात मैं नहीं कहता, स्वयं विदेशियों ने इस बात को स्वीकारा है। अपनी बात के समर्थन के लिए हम कुछ साक्षियाँ उद्धृत करते हैं—

मि० डेलमार महोदय लिखते हैं—

"पश्चिमी संसार को जिन बातों पर अभिमान है, वे असल में भारतवर्ष से ही वहाँ गई हैं। और-तो-और तरह-तरह के फल, फूल, पेड़-पौधे, जो इस समय यूरोप में पैदा होते हैं, हिन्दुस्तान से ही वहाँ लाकर लगाये गये थे। मलमल, रेशम, घोड़े, टीन, इनके साथ-साथ लोहे और सीसे का प्रचार भी यूरोप में भारत से ही हुआ। केवल इतना ही नहीं, ज्योतिष, वैद्यक, अङ्कगणित, चित्रकारी और कानून भी भारतवासियों ने ही यूरोपवालों को सिखलाया।"

—सूक्तिसागर, रमाशंकर गुप्त, पृ० ३५७ से उद्धृत

मैक्डानल महोदय स्वीकार करते हैं कि कृत्रिम नाक बनाने की विद्या भारतवर्ष से ही अन्यत्र गई। उनके शब्द हैं—

"In modern days European surgery has borrowed the operation of artificial noses from India where

---

१. उद्यान, वाटिका

English-men became acquainted with the art in the last century."

—A History of Sanskrit-literature, P. 363

भाव यह है कि नाक का ऑपरेशन तथा कृत्रिम नाक का बनाना अंग्रेजों ने भारतीयों से विगत शताब्दी (अट्ठारहवीं शताब्दी) में सीखा था।

भारतीयों के शल्यशास्त्र और उपकरणों की प्रशंसा करते हुए डॉ० श्रीमती मेनिंग लिखती हैं—

"The surgical instruments of the Hindus were sufficiently sharp, indeed as to be capable of dividing a hair longitudinally."

—Ancient and Mediaeval India, Vol. II P. 364

अर्थात् भारतीयों के चीर-फाड़ के यन्त्र इतने तेज़ और बारीक होते थे कि वे बाल को लम्बाई में भी चीर सकते थे।

इसी प्रकार रेवरेण्ड पीटर पार्सिवल का मत है कि—

"उनकी (भारतीय आर्यों की) पुस्तकों में १२७ प्रकार के चीर-फाड़ के अस्त्रों का वर्णन है।"

—Land of the Veda, P. 139

एल्फिंस्टन महोदय History of India में लिखते हैं—

"भारतीयों का शल्यशास्त्र भी उसी कमाल का है, जैसी उनकी ओषधियाँ।"

डॉ० वेबर महोदय के विचार भी पठनीय और मननीय हैं—

"In surgery, too, the Indians seem to have at-

tained a special proficiency, and in this department European surgeons might perhaps, even at the present day, still learn something from them as indeed they have already borrowed from them the operation of rhinoplasty."

ऐसा प्रतीत होता है कि शल्यशास्त्र में भी भारतीयों ने एक विशेष योगयता प्राप्त कर ली थी और इस विभाग में यूरोप के चिकित्सक कदाचित् आज भी भारतीयों से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने नाक का ऑपरेशन भारतीयों से ही सीखा है।

गणित भी भारतवर्ष से ही अन्य देशों में पहुँचा। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए श्री बिलयम्ज (Bilyamza) लिखते हैं–

"To the Hindus is due the invention of Algebra and Geometry and their application to Astronomy."

बीजगणित और रेखागणित का आविष्कार और खगोल-विद्या में उनका प्रयोग भारतीयों ने ही किया था।

संसार के सभी विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि यूरोपीय देशों ने गणितविद्या यूनान से सीखी थी, परन्तु यूनान ने यह विद्या कहाँ से सीखी? उत्तर है– भारतवर्ष से। अरबवालों ने यह ज्ञान भारतीयों से सीखा, इसलिए उन्होंने इसका नाम रक्खा 'हिन्दसः ज्ञान'। यहाँ तक कि १, २, ३, ४, ५ इत्यादि संख्यावाची अङ्कों का नाम भी उन्होंने हिन्दसः रक्खा। इस सम्बन्ध में श्रीमती मेनिंग ने ठीक ही कहा है–

"The Arabs were not in general inventors but recipients. Subsequent observation has confirmed this

view; for, not only did Algebra in an advance state exist in India prior to the earliest discloser of it by theArabians to modern Europe, but the names by which the numbers have become known to us are of Sanskrit origin."

—The India of Old by Shri Umaro
पृष्ठ 24 से उद्‌धृत

अरब निवासी (गणित के) आविष्कारक नहीं थे। उन्होंने यह ज्ञान भारतीयों से प्राप्त किया था। बाद की खोजों से यह बात सिद्ध हो गई है, क्योंकि जिस समय अरब ने यह ज्ञान यूरोपियनों को दिया उससे पूर्व भी भारत में बीजगणित उन्नत अवस्था में विद्यमान था। इतना ही नहीं, वे संख्यावाचक अङ्क जिस नाम से प्रसिद्ध हैं, वे भी संस्कृत के ही हैं।

वेद में सीसे की गोली का वर्णन भी विद्यमान है—

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽ सो अवीरहा।।

—अथर्व० १।१६।४

हे आततायी! यदि तू हमारी गौ का हनन करेगा, यदि तू हमारे घोड़े को मारेगा और यदि तू हमारे पुरुषों को विनष्ट करेगा तो हम तुझे सीसे से, अर्थात् सीसे की गोली से फोड़ देंगे।

वाल्मीकि रामायण में तोप का वर्णन प्राप्त होता है। अवलोकन कीजिए—

उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्।।

—वा०रा०बाल० ५।११

अयोध्या नगरी कैसी थी, उसका वर्णन करते हुए आदिकवि वाल्मीकिजी कहते हैं—वहाँ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं, जिनपर ध्वज फहरा रहे थे और वे बहुत-सी तोपों से व्याप्त थीं, अर्थात् अयोध्या के परकोटे पर स्थान-स्थान पर तोपें रक्खी हुई थीं।

पाठकगण! न केवल भारत ही महान् था, अपितु उसके निवासी भी महान् थे। भारतवासियों के उज्ज्वल एवं धवल चरित्र के गीत तो विदेशियों ने भी गाये हैं। मैगस्थनीज जब भारत में आया और यहाँ भ्रमण किया तो उसने देखा कि यहाँ के लोग धन-धान्य से सम्पन्न हैं, सोने-चाँदी के आभूषण अपने पास रखते हैं। इतना होते हुए भी वे घरों में ताला नहीं लगाते थे। शायद यही कारण था कि संस्कृतभाषा में ताले के लिए कोई शब्द भी नहीं था। जिस देश के निवासियों का आदर्श—

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।* —यजु:० ४०।१

रहा हो, वे दूसरों के धन की ओर दृष्टि भी कैसे डाल सकते थे? यहाँ तो बच्चे-बच्चे के हृदय में बाल्यकाल से ही यह भावना भरी जाती थी—**"परद्रव्येषु लोष्ठवत्"**—दूसरों के धन को मिट्टी के ढेले के समान समझो।

आज भी भारतवर्ष के जिन पहाड़ी प्रदेशों में वर्त्तमान विनाशकारी पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता नहीं पहुँची है, वहाँ वही प्राचीन वैदिक आदर्श देखा जा सकता है। अब भी भारतवर्ष में ऐसे स्थान हैं, जहाँ

* लालच मत करो, यह धन भला किसका है?

घरों में ताले नहीं लगते, जहाँ चोरियाँ नहीं होतीं।

भारतवर्ष की यह आचार-परम्परा मैगस्थनीज के समय में ही बनी हो, ऐसी बात नहीं है। भारतीयों का आचार तो सदा से उच्च रहा था। आज जब भी कहीं आदर्श-राज्य की बात होती है तो लोग कहते हैं कि हम राम-राज्य स्थापित करना चाहते हैं। राम-राज्य में ऐसी क्या विशेषता थी? यदि हम वाल्मीकि रामायण का अवलोकन करें तों हमें राम-राज्य की झलक मिल सकती है, परन्तु राम-राज्य के दृश्य से पूर्व आप महाराज दशरथ के राज्य का अवलाकन कीजिए-

तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥
नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत् तस्मिन्पुरोत्तमे।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽ गवाश्वधनधान्यवान्॥
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान् न च नास्तिकः॥
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः॥
नाकुण्डली नामुकटी नास्त्रग्वी नाल्पभोगवान्।
नामृष्टो न नलिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते॥
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः॥
नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्त्रदः।
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन॥
दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः।
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे॥

-वा० रा० बाल० ६।६-१०, १२, १५, १८

उस श्रेष्ठ नगरी (अयोध्या) में सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, महाविद्वान्, अपने-अपने धन से सन्तुष्ट, अलोभी और सत्यवक्ता थे।

वहाँ कोई ऐसा गृहस्थी न था जो थोड़े संग्रहवाला हो (प्रत्येक के पास पर्याप्त धन था), कोई ऐसा गृहस्थी नहीं था, जिसकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होती हो और ऐसा भी कोई घर नहीं था जो गौ, अश्व और धन-धान्य से भरपूर न हो।

अयोध्या में कोई पुरुष ऐसा न था जो कामासक्त हो, कोई व्यक्ति ऐसा न था जो कंजूस हो, दान न देता हो। क्रूर, मूर्ख और नास्तिक (ईश्वर, वेद और पुनर्जन्म में विश्वास न रखनेवाला) व्यक्ति तो अयोध्या में कोई दिखाई ही न देता था।

सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा, इन्द्रियों को वश में रखनेवाले, सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शील और सदाचार की दृष्टि से महर्षियों के समान निर्मल थे।

अयोध्या में कोई भी व्यक्ति ऐसा न था जो कानों में कुण्डल, सिर पर मुकुट और गले में माला धारण न करता हो। अल्पभोगी, मैले अङ्गोंवाला, चन्दन, इत्र, तेल, फुलैल न लगानेवाला भी वहाँ कोई नहीं था।

अयोध्या में कोई मनुष्य ऐसा न था जो प्रतिदिन अग्निहोत्र न करता हो, जो क्षुद्र-हृदय हो, कोई चोर नहीं था और न ही कोई वर्णसंकर था।

अयोध्या में कोई ऐसा व्यक्ति भी नहीं था जो छह अङ्गों-(शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्त और छन्द)-सहित वेदों को न जानता हो। जो उत्तम व्रतों से रहित हो, जो महाविद्वान् न हो, जो निर्धन

हो, जिसे शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो—ऐसा भी कोई न था।

अयोध्या के सभी निवासी दीर्घ-जीवी, धर्म और सत्य का आश्रय लेनेवाले, पुत्र, पौत्र और स्त्रियोंसहित उस नगर में रहते थे।

यह है महाराज दशरथ का राज्य। अब आप राम-राज्य की छटा देखिए, परन्तु ठहरिए, राम-राज्य की छटा देखने से पूर्व आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन की एक-दो घटनाओं का अवलोकन कीजिए—

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जब पिताजी से वनों की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा लेने उनके पास पहुँचे तो उन्होंने श्रीराम से कहा—

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥

—वा० रा० अयो० ३४।२६

हे राम! मैं कैकेयी को वरदान देकर उसमें फँस गया हूँ। तुम मुझे गिरफ्तार करके जेल में डालकर आज ही अयोध्या के राजा बन जाओ।

पिताजी की ऐसी आज्ञा सुन, श्रीराम ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

भवान् वर्षसहस्राय पृथिव्या नृपते पतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे राजस्य कांक्षिता॥

—वा० अयो० ३४।२८

पिताजी! आप सहस्रों वर्ष तक राजा बनकर पृथिवी पर शासन करें। मैं तो अब वन में जाकर ही निवास करूँगा, मुझे राज्य की आकांक्षा नहीं है।

यह है भारतीय संस्कृति की मुँह बोलती तस्वीर! अब एक अन्य चित्र भी देखिए—

मुग़ल सम्राट् औरंगजेब ने दिल्ली का राज्य हथियाने के लिए अपने भाइयों की नृशंस हत्या की और अपने पिता को जेल में डाल दिया। जेल में भी उसे अनेक कष्ट दिये। इस घटना का उल्लेख सभी इतिहासकारों ने किया है। आक़िल ख़ाँ ने अपने ग्रन्थ "वाक़आत आलमगीरी" में इस घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और शाहजहाँ का अपने पुत्र के नाम एक पत्र भी उद्धृत किया है, जिसमें उसने लिखा था—

ऐ पिसर तू अजब मुसलमानी,
कि जिन्दा जानम ब आब तरसानी।
आफ्रींबाद हिन्दुवान सद बार,
मे देहन्द पिदरे मुर्दारा वा दाइम आब॥

हे पुत्र! तू विचित्र मुसलमान है जो अपने जीवित पिता को पानी के लिए भी तरसा रहा है। शत-शत बार प्रशंसनीय हैं वे हिन्दू, जो अपने मृत पिता को भी जल देते हैं।

यह घटना उस समय की है जब भारतवर्ष में वेद-विरुद्ध मृतक-श्राद्ध की कुप्रथा आरम्भ हो गई थी। इस घटना के इतने भाग से सहमत न होते हुए भी एक बात यहाँ स्पष्ट है कि आर्यों के आचार-विचार और व्यवहार की विदेशियों ने भी, अन्य मतावलम्बियों ने भी प्रशंसा की है।

श्रीराम के जीवन की एक अन्य धाटना का अवलोकन कीजिए। श्रीराम और लक्ष्मण चित्रकूट में बैठे हुए वार्त्तालाप में संलग्न हैं। लक्ष्मणजी भाई भरत

की प्रशंसा करते हुए कहते हैं–

"हे राम! राज्य के सम्पूर्ण सुखों को तिलाञ्जलि देकर भरत भी आप ही के समान तप कर रहा है। वह भूमि पर सोता है। प्रातः उठकर नदी पर शीतल जल से स्नान करता है। बचपन में अनन्त सुखों में लालन-पालन होने पर भी पता नहीं वह इन कष्टों को किस प्रकार सहन करता होगा? अपने तप के द्वारा भारत ने स्वर्ग=सुखविशेष प्राप्त कर लिया है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। संसार में जो यह कहावत प्रचलित है कि–

न पित्र्यमनुर्वन्तते मातृकं द्विपदा इति।
ख्यातो लोकप्रवादोऽ यं भरतेनान्यथा कृतः॥*

–वा० रा० अरण्य० १६।३४

"मनुष्य में पिता का स्वभाव नहीं आता, अपितु माता के गुण ही आते हैं"। भरतजी ने इस कहावत को झूठा करके दिखा दिया, परन्तु–

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु साऽ म्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥

–वा० अरण्य० १६।३५

जिसका पति महाराज दशरथ-जैसा हो, जिसका पुत्र साधु भरत-जैसा हो, वह माता कैकेयी किस प्रकार ऐसे क्रूर स्वभाव की हुई?

मर्यादा पुरुषोत्तम राम लक्ष्मण द्वारा की गई कैकेयी

---

* रामायण के इस श्लोक के आधार पर ही यह कहावत बनी प्रतीत होती है–

माँ पै पूत पिता पै घोड़ा। बहुत नहीं तो थोड़ा-थोड़ा॥

की इस निन्दा को सहन न कर सके, अतः वे तुरन्त लक्ष्मणजी से बोले—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥

—वा० रा० अरण्य० १६।३७

हे भाई लक्ष्मण! तुम मंझली माता कैकेयी की निन्दा मत करो। तुम तो इक्ष्वाकुनाथ भरत की ही चर्चा करो।

यह है श्रीराम का अपनी विमाता के प्रति व्यवहार!

अपने शत्रु के प्रति श्रीराम के अनुपम और आदर्श व्यवहार का अवलोकन भी कीजिए। रावण को मारकर श्रीराम विभीषण से उसका दाहकर्म करने के लिए कहते हैं। विभीषण के आनाकानी करने पर वे कहते हैं—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥

—वा० रा० यु० १११।१००

जब तक मनुष्य जीता है तभी तक उसके साथ वैर होता है। रावण मर गया, अतः उसके साथ हमारा वैर भी समाप्त हो गया। हमारा प्रयोजन—नारीजाति का उद्धार भी पूरा हो गया। अब तुम इसका दाह-संस्कार करो। यह जैसा तुम्हारा भाई है, वैसा ही मेरा भी भाई है।

श्रीराम के चरित्र का जाज्वल्यमान चित्र उस समय हमारी आँखों के समक्ष साकार हो उठता है, जब हमें मन्थरा के प्रति श्रीराम के विचारों का ज्ञान होता है।

जब श्रीराम वनों में चले गये और भरत तथा शत्रुघ्न ननिहाल से लौटकर आये तो उन्हें बिना प्रयास के ही इतने बड़े राज्य के मिलने की प्रसन्नता नहीं हुई। शत्रुघ्न को तो मन्थरा को देखकर इतना क्रोध आया कि वे उसे बालों से पकड़कर घसीटने लगे। इतना ही नहीं, वे तो उसका काम तमाम करने पर उतारू हो गये। ऐसी भयङ्कर परिस्थिति को देखकर भरतजी ने कहा—

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥

—वा० रा० आयो० ७८।२३

जब श्रीराम को इस कुब्जा के मारे जाने का समाचार मिलेगा तो वे धर्मात्मा निश्चय ही तुझसे और मुझसे बोलेंगे तक नहीं।

यह है श्रीराम के आदर्श-जीवन की अनुपम झाँकी!

श्रीराम के जीवन के कुछ दृश्यों के पश्चात् अब आप राम-राज्य का भी दर्शन कीजिए। महर्षि वाल्मीकि ने राम-राज्य का चित्र यूँ उपस्थित किया है—

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति॥
निर्दस्युरभवल्लोको नानार्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते॥
सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम्॥
नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः।।

—वा० रा० युद्ध० १२८।९८,१००, १०३,१०४

श्रीराम के राज्य-शासन में न तो विधवाओं का चीत्कार सुनाई देता था, न साँप-बिच्छू आदि का भय था और न लोगों को रोगों का भय था।

राम-राज्य में डाकू और चोरों का भय नहीं था, दूसरें के धन को लेना तो दूर, कोई छूता तक नहीं था। वृद्ध बालकों का प्रेत-कार्य नहीं करते थे, अर्थात् बालमृत्यु नहीं होती थी।

सभी नागरिक हर्षोल्लास से पूर्ण थे, सभी धार्मिक थे। श्रीराम की ओर निहारते—राम का आदर करते हुए वे परस्पर एक-दूसरे की हिंसा नहीं करते थे।

राम-राज्य में कन्दमूल खूब होते थे, वृक्ष सदा फूलते और फलते रहते थे, यथासमय वृष्टि होती थी और सदा सुखस्पर्शी वायु चला करती थी।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी लोभी नहीं था। सब लोग अपना-अपना कार्य करते हुए सन्तुष्ट रहा करते थे।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने राम-राज्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज्य नहि काहुहि व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
अल्पमृत्यु नहीं कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब बिरुज शरीरा।।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

महाराज दशरथ और श्रीराम की आदर्श राज्य-व्यवस्था आगे भी पर्याप्त समय तक चलती रही। महाराज अश्वपति ने अपने राज्य के सम्बन्ध में गर्वपूर्वक घोषणा की थी–

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

–छन्दोग्य० ५।११।५

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, कोई कञ्जूस नहीं है, कोई शराबी नहीं है, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो प्रतिदिन अग्निहोत्र न करता हो। कोई मूर्ख नहीं है, कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है, फिर भला व्यभिचारिणी स्त्री तो हो ही कैसे सकती है?

राज्य की इस श्रेष्ठ व्यवस्था का निर्माण होता था मन्त्रियों के द्वारा। भारतवर्ष के मन्त्री कैसे होते थे, इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें 'मुद्रा-राक्षस' नाटक में प्राप्त होता है। आइए, सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रधानमन्त्री आचार्य चाणक्य की कुटी के दर्शन कीजिए–

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां,
वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणभिराभिः,
विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्॥

एक ओर गोबर के उपलों को तोड़ने के लिए पत्थर का टुकड़ा पड़ा हुआ है, दूसरी ओर शिष्यों द्वारा लाई हुई कुशाओं का ढेर लगा हुआ है। पुरानी दीवार

की छत पर जलाने के लिए लकड़ियाँ सुखाई गई हैं, जिनसे छत का सिरा झुक गया है।

पाठकगण! सारे संसार के इतिहास को देख जाइए, मिलेगा कहीं ऐसा निर्लोभी ब्राह्मण?

यह तो हुआ प्राचीन प्रधानमन्त्री का चित्रण। अब तनिक इसकी तुलना आज के मन्त्रियों के कीजिए। क्या ठाठ-बाट हैं आज के मन्त्रियों के, देखिए-

दिशि दिशि बहुकारा वाहकैः सर्वयुक्ताः
क्व हि रक्षकवर्गश्च मालासिंहा क्वचिच्च।
क्वचिदपि कुक्कुटाण्डं मांसपात्रं क्वचिच्च,
सकल-सचिवगेहे वारुणी-धूम्रपानम्॥

चारों ओर ड्राइवरों से युक्त अनेक कारें खड़ी हुई हैं। कहीं रक्षकसमूह (Body Guards) खड़े हुए हैं तो कहीं मालासिन्हा (अभिनेत्रियाँ) घेरे खड़ी हैं। कहीं मुर्गी के अण्डे हैं तो कहीं मांस-पात्र पड़े हुए हैं। सभी मन्त्रियों के घरों में धूम्रमान और शराब के दौर चलते हैं।

जिस देश के मन्त्री इस प्रकार के भोग-विलास-प्रिय हों वह देश रसातल को नहीं जाएगा तो और कहाँ जाएगा! अस्तु! मैं पुनः अपने विषय की ओर लौटता हूँ।

भारत की महत्ता के सन्दर्भ में यदि भारतीय नारी की चर्चा न की जाए तो यह सन्दर्भ अधूरा ही रह जाएगा, अतः यहाँ मैं भारतीय नारी की पवित्रता, शील और सतीत्व के सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। भारतीय नारी का जो शील और सदाचार रहा है, वह संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिल

सकता।

जिस समय रावण पञ्चवटी में सीता के समक्ष आकर, उसे अपने राज्य का प्रलोभन देकर अपनी पटरानी बनाना चाहता है तब सीता उसे फटकारते हुए कहती है–

त्वं पुजर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा।।

–वा०रा०अरण्य० ४७।३७

अरे दुष्ट! तू गीदड़ होकर मुझ सिंहनी को प्राप्त करना चाहता है। स्मरण रख, तू मुझे उसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता जैसे कोई व्यक्ति उछल-कूदकर सूर्य की प्रभा को नहीं छू सकता।

क्या संसार के साहित्य में गान्धारी-जैसा उदाहरण मिल सकता है, जिसने अपने पति के नेत्रहीन होने के कारण जीवनभर के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली थी।

क्या संसार के इतिहास में राजपूत रमणियों का आदर्श कहीं मिल सकता है? लीजिए, पढ़िए, राजपूत रमणियों की गौरव-गाथा के दो स्वर्णिम एवं उज्ज्वल पृष्ठ–

राजस्थान की राजकुमारी दुर्गा का विवाह हो चुका था। उसे विदाई देने के लिए शहनाइयाँ बज रही थीं। डोली को भेजने की तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। वर महोदय प्रणाम करने के लिए रनिवास में पहुँचे तो उन्होंने हँसी-मजाक में बड़ी साली की कलाई पर हाथ रख दिया। साली को अपने बहनोई की आँखों में शरारत-सी दृष्टिगोचर हुई। बस, फिर क्या था, सिंहनी

की आँखों में खून उतर आया। राजपूती आन, मान और मर्यादा अपने निकट-सम्बन्धी को भी क्षमा करने के लिए तैयार नहीं थी। उसने अपनी कलाई को कटार के एक झटके में यह कहकर काट दिया कि जिस कलाई का दूसरे के द्वारा स्पर्श हो गया, वह मेरे पति के स्पर्श के योग्य नहीं रही।

उधर डोली विदा हुई, परन्तु दूल्हा को उसकी शरारत का दण्ड देनेवाले भी उसके पीछे चल पड़े। शहर से थोड़ी दूर पर डोली रोक दी गई। अब दुल्हा के हाथ काटने की बारी थी। बड़े साद्दू ने छोटे को ललकारा और थोड़ी देर में उसकी लाश लोटने लगी। साद्दू जब हाँफता और काँपता डोली की ओर बढ़ा और पर्दा उठाया तो दुर्गावती ने कहा—"तुमने बसने से पूर्व ही मेरा संसार उजाड़ दिया, परन्तु राजपूती मर्यादा को अक्षुण्ण रखने में मेरा भी उतना ही भाग है जितना मेरी बहिन ने दिखाया है।"

भारतीय गगन की देदीप्यमान तारिका पद्मिनी की गौरव- गाथा से कौन भारतीय अपरिचित होगा? अलाउद्दीन ख़िलजी ने पद्मिनी के अनुपम सौन्दर्य की कथा सुनकर सन् १३०१ में चित्तौड़ पर आक्रमण किया। वीर राजपूतों ने डटकर मुक़ाबिला किया। कई मास तक दुर्ग को घेरे रहने के पश्चात् भी जब ख़िलजी को विजय की कोई आशा दृष्टिगोचर नहीं हुई तो उसने छल-कपट से काम लेने का निश्चय किया। ख़िलजी ने महाराज भीमसिंह को सन्धि की बातचीत के लिए निमन्त्रण भेजा और जब भीमसिंह ख़िलजी के कैम्प में पहुँचे तो उन्हें बन्दी बना लिया गया। रिहाई के लिए यह

शर्त रक्खी गई कि शीशे में पद्मिनी का मुख दिखाने का प्रबन्ध किया जाए। पद्मिनी को पता लगा तो वह सात सौ डोलियों में ३५०० राजपूज जवानों को लेकर अलाउद्दीन के डेरे में पहुँची और वहाँ भीषण मारकाट कर अपने पति को अलाउद्दीन की क़ैद से छुड़ा लाई। ख़िलजी को दुम दबाकर भागना पड़ा।

इस पराजय से खिसियाना होकर ख़िलजी ने पुनः आक्रमण करने के लिए ज़ोर-शोर से तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। एक वर्ष के पश्चात् भारी सेना लकेर फिर आक्रमण किया। चित्तौड़ में मुक़ाबिले के लिए सेना कम थी। राजपूत वीर केसरिया बाना पहनकर अन्तिम श्वास तक लड़े और लड़ते-लड़ते शहीद हो गये। उधर पद्मिनी ने चिताएँ तैयार कराईं। चौदह सहस्र राजपूत रमणियाँ आग में कूदकर भस्म हो गईं।

जब अलाउद्दीन ने पद्मिनी को पाने के लिए दुर्ग (क़िले) में प्रवेश किया तो देखा कि चिताएँ धू-धू करके जल रही हैं। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने पर उसने देखा कि एक वृद्धा बैठी हुई है। ख़िलजी ने आगे बढ़कर वृद्धा से पूछा—"पद्मिनी कहाँ है?" वृद्धा ने चिता की ओर सङ्केत करके बताया कि वह तो समाप्त हो चुकी, परन्तु तुम्हारे लिए एक सन्देश छोड़ गई है। ख़िलजी ने कहा—"जल्दी बता, उसने मेरे लिए क्या सन्देश दिया था?" वृद्धा बोली—पद्मिनी ने कहा था—

ओ पापी! तू इस सूरत को पा नहीं सकता।
यह भोजन शेर का है, कुत्ता खा नहीं सकता।।

यह कहकर वृद्धा भी चिता में कूद पड़ी।

प्रिय पाठकवृन्द! अब तक हमने भारत की महत्ता

और गौरव को प्रकट करनेवाले कुछ तथ्य आपके समक्ष प्रस्तुत किये हैं। भारतवर्ष की इन गौरवमयी परम्पराओं को, भारत की महत्ता को, भारत की सभ्यता और संस्कृति को मिटाने के लिए अनेक प्रयत्न हुए। हूण यहाँ आये, उन्होंने भारत पर आक्रमण किये, परन्तु मुँह की खाकर वापस गये। शकों ने भी भारत की ओर दृष्टि उठाई, परन्तु उन्हें भी पराजय का मुख देखना पड़ा। आज हमारी भारत सरकार ने वैदिक सृष्टि संवत् को नहीं अपनाया, विक्रम संवत् को भी तिलांजलि देकर उन्होंने पराजित शकों का संवत् अपनाकर अपनी पराजित मनोवृत्ति को द्योतित किया है। शोक! महाशोक!!

भारतीय गौरव और मर्यादा को नष्ट करने के लिए चंगेज खाँ, तैमूरलङ्ग, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली ने आक्रमण किये, किन्तु वे भी सफल नहीं हुए। औरंगजेब की तानाशाही और तलवार की धार भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता को नष्ट करने में असमर्थ रही। कौन-से अत्याचार थे जो औरंगजेब के समय में हिन्दुओं पर नहीं ढाये गये। हिन्दुओं की चोटी और यज्ञोपवीतों को काट-काटकर हमाम गर्म किये गये, परन्तु औरंगजेब अपने मिशन में असफल रहा।

औरंगजेब के समय में तो आर्यों पर भीषण अत्याचार किये ही गये थे, परन्तु उसके पश्चात् भी आर्यों को जो कष्ट, पीड़ाएँ और यातनाएँ दी गईं वे कम लोमहर्षक नहीं है। यहाँ हम केवल एक घटना का उल्लेख करते हैं।

फरुखसियर ने कूटनीति से काम लेकर सिखों को बन्दा वैरागी के विरुद्ध भड़का दिया। सिखों ने

वैरागी का साथ छोड़ दिया। अब क्या था फरुखसियर ने ३०,००० सेना लेकर वैरागी को गुरुदासपुर में घेर लिया। वैरागी की सेना की रसद बन्द कर दी गई। सिख मुसलमानों से जा मिले। वैरागी ने विवश होकर आत्म–समर्पण कर दिया। उसे दिल्ली में लाया गया और उसके मांस को गर्म चिमटों से नोचने का आदेश दिया गया।

जिस समय दिल्ली के चाँदनीचौक बाज़ार में फव्वारे के निकट फरुखसियर के आदेशानुसार लोहे की गर्म--गर्म सलाखों से बन्दा वैरागी का मांस नोचा जा रहा था, उस समय वैरागी अपने शरीर से बहनेवाले खून को अपने दोनों होथों में लेकर अपने मुखमण्डल पर लगा रहे थे। जब पास खड़े लोगों ने इसका कारण पूछा तो वैरागी ने हँसते हुए कहा–"मरते समय एक बलिदानी के मुखमण्डल पर पीलापन नहीं, अपितु एक ओज, तेज और लालिमा होनी चाहिए। शरीर से रक्त अधिक निकल जाने से कहीं मेरा मुखमण्डल पीला न पड़ गया हो, इसलिए मैं इस रक्त को अपने मुखमण्डल पर लगा रहा हूँ।"

धन्य है, वीर वैरागी! तुझे धन्य है! तेरा त्याग और बलिदान अनुपम था।

मुसलमानों के ऐसे भीषण अत्याचार भी आर्यजाति को, आर्यसभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने में सर्वथा असफल रहे। यह बात मैं नहीं कहता, स्वयं मुसलमानों ने इस बात को स्वीकार किया है। मुसलमानों का वह काफ़िलः जो एक हाथ में कुरआन और दूसरे हाथ में तलवार लेकर जहाँ गया, जिस स्थान पर गया, वहीं

मार–काट मचाता हुआ, वहाँ के लोगों को मुसलमान बनाने में सफल हुआ, परन्तु भारत में उसकी दाल न गली। ख़्वाजा अलताफ़ हुसैन हाली ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के समक्ष अपनी पराजय को निम्न शब्दों में स्वीकार किया है–

वो दीने हिजाजी[१] का बेबाक[२] बेड़ा।
निशाँ जिसका अक्साये आलम[३] में पहुँचा।।
मुजाहिम[४] हुआ कोई खतरा न जिसका।
न उम्माँ में ठठका न कुल्जुम[५] में झझका।।
किये पैसिपुर[६] जिसने सातों समुन्दर।
वो डूबा दहाने में गङ्गा के आकर।।

जिस भारत की सभ्यता और संस्कृति को नादिरशाह और तैमूरलङ्ग की मार–काट और लूट–मार ध्वस्त न कर सकी, जिस भारत की आर्यजाति को औरंगजेब की तलवार अपने अधीन न कर सकी, जिस भारतीय मान और मर्यादा को संसार की कोई भी शक्ति पददलित नहीं कर सकी, आज उसी भारत की प्राचीन परम्पराएँ नष्ट एवं ध्वस्त होती हुई प्रतीत हो रही हैं। प्रश्न उपस्थित होता है, आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत की अवनति का एक नहीं अनेक कारण हैं। यहाँ हम प्रमुख सात कारणों का उल्लेख करेंगे।

---

१. अरब का मत=इस्लाम, २. निर्भय,
३. समस्त संसार, ४. सम्मुख,
५. दरिया, समुद्र, ६. पददलित करना।

मूर्त्तिपूजा

भारत की अवनति का मूल और सबसे प्रमुख कारण है 'मूर्त्तिपूजा'। इस विषय में हम बाबू श्री देवेन्द्रनाथजी मुखोपध्याय के स्वर-में-स्वर मिलाकर कहना चाहते हैं—

"मूर्त्तिपूजा ने भारत के अकल्याण की जो सामग्री एकत्र की है, उसे लेखनी लिखने में असमर्थ है। मूर्त्तिपूजा ने भारतवासियों का जो अनिष्ट किया है, उसे प्रकट करने में हमारी अपूर्ण-विकसित भावप्रकाशक शक्ति अशक्त है। जो धर्म सम्पूर्णभाव से आन्तरिक वा आध्यात्मिक था, उसे सम्पूर्णरूप से बाह्य किसने बनाया?—**मूर्त्तिपूजा ने।** काम आदि शत्रुओं के दमन और वैराग्य के साधन के बदले तिलक और त्रिपुण्ड किसने धारण कराया?—**मूर्त्तिपूजा ने।** ईश्वर-भक्ति, ईश्वर-प्रीति, परोपकार और स्वार्थ-त्याग के बदले अङ्ग में गोपी-चन्दन का लेपन, मुख से गङ्गालहरी का उच्चारण, कण्ठ में अनेक प्रकार की मालाओं का धारण किसने सिखाया?—**मूर्त्तिपूजा ने।** संयम, शुद्धता, चित्त की एकाग्रता आदि के साथ में त्रिसीमा (धारणा, ध्यान, समाधि) में प्रवेश न कर केवल दिनविशेष पर खाद्यविशेष का सेवन न करना, प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल में अलग-अलग वस्त्रों के पहनने का आयोजन और तिथिविशेष पर मनुष्यविशेष का मुख देखना तो दूर रहा, उसकी छाया तक का स्पर्श न करना, यह सब किसने सिखाया?—**मूर्त्तिपूजा ने।** हिन्दुओं के चित्त से स्वाधीन चिन्तन की शक्ति किसने हरण की?—**मूर्त्तिपूजा ने।** हिन्दुओं के मनोबल, वीर्य, उदारता और सत्साहस

को किसने दूर किया?—**मूर्त्तिपूजा ने**। प्रेम, संवेदना और परदु:खानुभूति के बदले घोरतर स्वार्थपरता को हिन्दुओं के चरित्र में कौन लाई?—**मूर्त्तिपूजा**। हिन्दुओं को अमानुष, अपितु पशुओं से भी अधम किसने बनाया?—**मूर्त्तिपूजा ने**। आर्यावर्त्त के सैकड़ों टुकड़े किसने किये?—**मूर्त्तिपूजा ने**। आर्यजाति को सैकड़ों टुकड़ों में किसने बाँटा?—**मूर्त्तिपूजा ने**। इस देश को सैकड़ों वर्षों से पराधीनता की लोहमयीशृङ्खला में किसने जकड़े रक्खा?—**मूर्त्तिपूजा ने**। कौन-सा अनर्थ है, जो मूर्त्तिपूजा द्वारा सम्पादित नहीं हुआ? सच्ची बात तो यह है कि आप चाहे हाईकोर्ट के न्यायधीश हों, चाहे गवर्नर (लाट)-साहब के प्रधानतर सचिव, आप चाहे बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य हों, चाहे वाग्मिता में सिसरो (Cicero) और गेटे (Geoethe) से भी बढ़कर, आप अपने देश में पूजित हों या विदेश में आपकी ख्याति का डङ्का बजा हो, आप सरकारी कानून को पढ़कर सब प्रकार से अकार्य और कुकार्य को आश्रय देनेवाले अटर्नी (Attorney) कुल के उज्ज्वलतम रत्न हों, चाहे मिष्टभाषी, मिथ्योजीवी सर्व-प्रधान स्मार्त (वकील), परन्तु यदि किसी अंश में भी आप मूर्त्तिपूजा का समर्थन करेंगे, तो हमें यह कहने में अणुमात्र भी सङ्कोच नहीं होगा कि आप किसी अंश में भी भारत के मित्र नहीं हो सकते, क्योंकि मूर्त्तिपूजा भारतवर्ष के सारे अनिष्टों का मूल है।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र,
भूमिका पृष्ठ ७,८

प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० रामकृष्णगोपाल भाण्डारकर

जो प्रार्थनासमाज के अग्रनायकों में एक थे, मूर्त्तिपूजा के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखते हैं–

"अमुक देवता अथवा अमुक प्रतिमा को ही भज या उसकी शरण में जा, यह कहना ठीक नहीं। केवल प्रतिमा को दृष्टि के सामने रखकर भजन-पूजन करने से अनेक अनिष्ट परिणाम होते हैं। प्रतिमा पुरुष की हो या स्त्री की, सच्चे देवता के स्वरूप और महिमा का विस्मरण तो हो ही जाता है और उस देव के उपासक उसके ऊपर मनुष्य के क्रियाकलाप का आरोपण कर बैठते हैं। देव यदि पुरुष हो तो उसके लिए पत्नी खोज लाते हैं, यदि देवता स्त्री हो तो उसके लिए पति की व्यवस्था की जाती है। उपासक यदि तम्बाकू-सेवी हो तो उसके लिए पान, सुपारी तथा तम्बाकू की पीकदान की व्यवस्था देवगृह में की जाती है। इस प्रकार प्रभु की केवल विडम्बना ही की जाती है।.......ऐसे अनिष्टों का समावेश धर्म में न होने पाए, इसलिए धर्माचरण में मूर्त्तिपूजा को स्थान नहीं देना चाहिए।" –बसन्तलाल मूरारका स्मृतिग्रन्थ, पृष्ठ ३७५ से उद्धृत

वेद वैदिक संस्कृति के मूलाधार हैं, वे धर्म के आदिस्रोत और स्तम्भ हैं। यह डिण्डिम-घोष के साथ कहा जा सकता है कि चारों वेदों में एक भी ऐसा मन्त्र नहीं है जो मूर्त्तिपूजा का विधायक हो। चारों वेदों में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं है कि मनुष्यों को सोने, चाँदी, लोहा, तांबे या काष्ठ की मूर्त्तियाँ बनानी चाहिएँ और उनके मुँह में लड्डू ठूँसने चाहिएँ, उनके ऊपर पंखा झलना चाहिए, उन्हें जल चढ़ाना चाहिए। मूर्त्तिपूजा

वेदविरुद्ध है और बहुत अर्वाचीन है।

संसार में जितने भी सुधारक, महापुरुष और सन्त हुए सभी ने मूर्त्तिपूजा का घोर खण्डन किया है। स्वामी शंकराचार्य ने अपनी पुस्तक 'परापूजा' में मूर्त्तिपूजा की धज्जियाँ उड़ा दी हैं।

कबीरजी ने भी मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है। एक स्थान पर वे कहते हैं–

मौको कहाँ ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
न मैं देवल न मैं मस्जिद, न काबा कैलास में।।
खोजी होय तो तुरत मिलि हौं, पलभर की तलाश में।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।।

इसी प्रकार नानकजी, दादू, रैदास आदि सन्तों ने मूर्त्तिपूजा का घोर खण्डन किया है। दादूजी कहते हैं–

पत्थर पीवे धोईके पत्थर पूजे प्रान।
अन्तकाल पत्थर भये भव डूबे अज्ञान।।

आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द मूर्त्तिपूजा के प्रबल विरोधी थे। वे बड़ी निर्भीकता से मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया करते थे। इस विषय में पादरी जे०जे० लूकस ने, जिन्होंने सन् १८७० में फर्रुखाबाद में, न केवल स्वामीजी के व्याख्यान ही सुने थे अपितु उनसे भेंट भी की थी, देवेन्द्रबाबू को उन्होंने जो विवरण दिया था, वह पठनीय है। लूकस महोदय ने बताया था कि "वे मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध इतने बल और इतने स्पष्ट विश्वास के साथ बोलते थे कि मुझे फर्रुखाबाद की जनता की ओर से उनका हार्दिक स्वागत किये जाने पर आश्चर्य हुआ। मुझे उनका यह कथन स्मरण है कि जब मैंने उनसे कहा कि यदि आपको तोप

के मुँह पर रखकर आपसे कहा जाए कि यदि तुम मूर्त्ति को मस्तक नहीं नवाओगे तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जाएगा, तो आप क्या कहोगे? स्वामीजी ने उत्तर दिया था कि मैं कहूँगा कि "उड़ा दो।"

जब चूहे की घटना से महर्षि की आस्था मूर्त्तिपूजा से हट गई तो भय और प्रलोभन आदि संसार की कोई शक्ति उन्हें पुनः मूर्त्तिपूजा में प्रवृत्त न करा सकी। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में मूर्त्तिपूजा की कैसी करारी एवं युक्तियुक्त समालोचना की है, तनिक अवलोकन कीजिए–

"जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना, यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सारे राज्य की सत्ता से छुड़ाके एक छोटी–सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो! यह कितना बड़ा अपमान है, वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प–पत्र तोड़के क्यों चढ़ाते? चन्दन घिसके क्यों लगाते? घण्टा, घड़ियाल, झाँझ, पखाजों को लकड़ी से कूटना–पीटना क्यों करते हो? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते हो? शिर में है, क्यों नवाते हो? अन्न–जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते हो? जल में है, स्नान क्यों कराते हो, क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो या व्याप्य की? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण–लकड़ी आदि पर चन्दन, पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो? और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमरेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते

हो? हम पाषाणादि के पूजारी हैं, ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते?" —सत्यार्थप्रकाश, एकाकदशसमुल्लासः

आगे चलकर मूर्त्तिपूजा के दोषों को महर्षि ने इस प्रकार गिनाया है—

"साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है, और निराकार अनन्त परमात्मा के ग्रहण में यावत् सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चञ्चल भी नहीं रहता, किन्तु उसी के गुण-कर्म-स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है, और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत् में मनुष्य स्त्री, पुत्र, धन, मित्रादि साकार में फँसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावे, क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है, इसलिए मूर्त्तिपूजा करना अधर्म है।

दूसरा—उसमें करोड़ों रुपये मन्दिर में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा—स्त्री-पुरुषों का मन्दिर में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई-बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

चौथा—उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थ-रहित होकर मनुष्य-जन्म व्यर्थ गँवाते हैं।

पाँचवाँ—नाना प्रकार की विरुद्धस्वरूप, नाम, चरित्रयुक्त मूर्त्तियों के पूजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके

विरुद्ध मत में चलकर आपसमें फूट बढ़ाके देश का नाश करते हैं।

छठा–उसी के भरोसे में शत्रु की पराजय और अपनी विजय मानके बैठे रहते हैं। उनकी पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन, भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गधे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेकविध दुःख पाते हैं।

सातवाँ–जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उसपर क्रोधित होकर मारता व गाली प्रदान करता है, वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्त्ति धरते हैं, उन दुष्ट बुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे?

आठवाँ–भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर, देश-देशान्तर में घूमते-घूमते दुःख पाते; धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते; चोर आदि से पीड़ित होते; ठगों से ठगाते रहते हैं

नवाँ–दुष्ट पूजारियों को धन देते हैं। वे उस धन को वेश्या, पर-स्त्रीगमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई-बखेड़ों में व्यय करते हैं, जिससे दाता के सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

दशवाँ–माता-पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्त्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

ग्यारहवाँ–उन मूर्त्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले-जाता है, तब हा-हा करके रोते रहते हैं।

बारहवाँ—पूजारी पर-स्त्रियों के संग और पूजारिन पर-पुरुषों के सङ्ग से प्रायः दूषित होकर स्त्री-पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं

तेरहवाँ—स्वामी-सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

चौदहवाँ—जड़ का ध्यान करनेवाले का आत्मा भी जड़-बुद्धि हो जाता है, क्योंकि देह का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

पन्द्रहवाँ—परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु-जल के दुर्गन्ध-निवारण और आरोग्यता के लिए बनाये हैं। उनको पूजारीजी तोड़-ताड़कर न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़कर वायु-जल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, इसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल, सड़कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिए पुष्पादि सुगन्धित पदार्थ रचे हैं?

सोलहवाँ—पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प, चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका के साथ संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर, सड़के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का, और सहस्रों जीव उसमें पड़ते, उसी में मरते और सड़ते हैं।

ऐसे-ऐसे अनेक मूर्त्तिपूजा के करने में दोष आते हैं, इसलिए सर्वथा पाषाणादि मूर्त्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य हैं और जिन्होंने पाषाणमय मूर्त्ति की पूजा

की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

महर्षि दयानन्द द्वारा गिनाये गये मूर्त्तिपूजा के दोषों की व्याख्या की जाए तो उसके लिए एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की अपेक्षा होगी, अतः हम उन सबपर कुछ न कहकर केवल छठे दोष के सम्बन्ध में कुछ लिखेंगे।

भारतवर्ष पराधीनता के पाशा में जकड़ा गया और लगभग ७०० वर्ष तक मुसलमानों ने भारत पर राज्य किया। इसका कारण क्या था? क्या आर्य युद्ध-कौशल या शारीरिक बल में किसी से कम थे? बिल्कुल नहीं। प्रसिद्ध इतिहासकार बदाऊनी ने एक स्थान पर लिखा है—"हिन्दुओं के बराबर प्रतापशाली पठान और मुग़लों में एक भी जाति विद्यामन नहीं है।" इतने वीर होते हुए भी हिन्दू पराजित क्यों हुए? इसका कारण है मूर्त्तिपूजा। मूर्त्तिपूजा करते-करते भारतवासियों की बुद्धि ऐसी मलिन एवं जड़ हो गई थी की लोगों में मूर्त्तियों द्वारा रक्षा, वरदान और अभिशाप का अन्धविश्वास घर कर गया था। इतिहास इस बात का साक्षी है।

सन् ७१२ में हज्जाज ने मुहम्मद बिन कासिम को सिन्ध पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उस समय मुहम्मद बिन कासिम की अवस्था केवल २० वर्ष की थी। वह ईरान और बिलोचस्तान होता हुआ ६,००० सैनिक और तीन सहस्त्र ऊँटों को लेकर सिन्ध पर चढ़ आया। जब राजा दाहर को पता लगा तो उसने अल्लाफ़ियों के सरदार मुहम्मद वारिस को उस सेना को सिन्ध की सीमा पर रोकने का आदेश दिया।

मुहम्मद वारिस ने कहा कि शत्रु को सीमा पर रोकने की कोई आवश्यकता नहीं है, उसे राजधानी तक आने दो, हम उनका काम तमाम कर देंगे। जब सेना सिन्ध में घुस आई तो दाहर ने मुहम्मद वारिस को फिर कहा कि हमने तुम्हारी प्राण-रक्षा की, तुम्हें शरण दी और अपनी सेना में भरती किया, अब तुम हमारी ओर से युद्ध करो। इसपर उस नमकहराम, कृतघ्न वारिस ने कहा—"आपने हमारे साथ जो उपकार किया है, वह मैं जानता हूँ, परन्तु चढ़ाई करनेवाले मुसलमान हैं और हमारा मज़हब (मत) मुसलमान को मुसलमान के साथ लड़ने की आज्ञा नहीं देता।" यह कहकर 'अल्लाहोकबर' का नारा लगाता हुआ वह मुहम्मद बिन कासिम की सेना में जा मिला, इसके अतिरिक्त सिन्ध के जाट और मेड़ भी जो हिन्दुओं से असन्तुष्ट थे, मुहम्मद बिन कासिम की सेना में जा मिले।

इस सब शक्ति को प्राप्त कर मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध के प्रसिद्ध नगर देवल पर आक्रमण किया। राजा दाहर ने तीस सहस्र सैनिकोंसहित कासिम का डटकर मुक़ाबिला किया। घमासान युद्ध हुआ। रणक्षेत्र लाशों से पट गया। शत्रु के छक्के छूट गये और घूटने टूट गये। कासिम का साहस जवाब दे गया। वह पीठ दिखा और सिर पर पैर रखकर भागनेवाला था कि एक देशद्रोही, नीच ब्राह्मण कासिम से जा मिला। उसने कहा कि यदि आप मेरी रक्षा करें और मुझे दक्षिणा दें तो मैं देवल की पराजय और आपकी विजय का रहस्य बता सकता हूँ। कासिम बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—"बहुत अच्छा!" तब ब्राह्मण ने उसे बताया कि

सामने मन्दिर के शिखर पर जो ध्वज लगा हुआ है उसे गिरा दिया जाए तो हिन्दुओं की कमर टूट जाएगी, वे समझ लेंगे कि देवता अप्रसन्न हो गये हैं और युद्ध करना बन्द कर देंगे। कासिम ने कहा–"वहाँ तो कड़ा पहरा है, चिड़िया भी वहाँ पर नहीं मार सकती, ऐसी स्थिति में झण्डे को कैसे गिराया जा सकता है?" ब्राह्मण ने कहा, "यह कार्य तो मैं कर दूँगा। मैं इस मन्दिर का पूजारी हूँ। रात्रि में इस ध्वज को मैं गिरा दूँगा।"

प्रातःकाल जब दाहर की रण के लिए उद्यत सेना को मन्दिर की चोटी पर झण्डा दिखाई नहीं दिया तो उनका उत्साह और साहस मन्द हो गया। उन्होंने समझ लिया कि देवता अप्रसन्न हो गये हैं, अब हमारी पराजय निश्चित है। सेना निराश होकर भागने लगी, राजा दाहर घायल होकर गिर पड़ा, उसका सिर काटकर एक भाले पर टाँग दिया गया। यह दृश्य देख सारी सेना भाग खड़ी हुई। देवल पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। नगर को लूटा गया। सहस्रों स्त्री–पुरुषों को मृत्यु के घाट उतारा गया। उस मन्दिर को तोड़कर उसके स्थान पर मस्जिद बनाई गई।

उसी नीच ब्राह्मण ने कासिम के पास आकर कहा–"देखिए, मैंने आपकी विजय कराई है। यदि आप मुझे इच्छानुसार उत्तम भोजन कराएँ तो मैं आपको एक गुप्त खज़ाने का पता भी बता सकता हूँ। कासिम ने उसे खूब भोजन कराया। तब वह पूजारी उसे एक ऐसे तहखाने में ले–गया जिसमें राज्य का खज़ाना सुरक्षित था। श्री गणपतराय अग्रवाल के अनुसार उस खजाने में तांबे की चालीस देग रक्खी थीं, जिनमें १७,२००

मन[१] सोना भरा था। यदि सोने का मूल्य सौ रुपये तोला[२] भी लगाया जाए तो आजकल के हिसाब से साढ़े पाँच अरब रुपये से भी अधिक मूल्य होगा। इन देगों के अतिरिक्त सोने की बनी हुई ६,००० मूर्त्तियाँ थीं, जिनमें सबसे बड़ी मूर्त्ति का वजन ३० मन था। हीरा, पन्ना, माणिक और मोती तो इतने थे कि उन्हें कई ऊँटों पर लादकर ले-जाया गया।

यह है मूर्त्तिपूजा का भीषण अभिशाप। यदि हिन्दुओं का मूर्त्तियों में अन्धविश्वास न होता तो भारत को ये दुर्दिन न देखने पड़ते। अन्त में हम महर्षि दयानन्द के शब्दों में इतना ही कहना चाहते हैं—"मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर मनुष्य चकनाचूर हो जाता है।"

हे अविद्या और अन्धकार की निद्रा में सोनेवाले भारतवासियो! बहुत सो चुके, बहुत लुट चुके। अब तो होश में आओ। इस पाखण्ड को तिलाञ्जलि देकर वेदोक्त विधि से प्रातः-सायं सन्ध्या और यज्ञ करो। उसी से कल्याण होगा और भारत पुनः अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करेगा।

फलित ज्योतिष

भारतवर्ष को अवनति के गढ़े में धकेलनेवाला दूसरा बहुत बड़ा कारण है—फलित ज्योतिष। यह फलित ज्योतिष कई भागों में विभक्त है, यथा मुहूर्त्त, नवग्रह-पूजा

---

१. मन = लगभग ३७.५ किलो ।

२. अब तो सोने का मूल्य लगभग ५५०० रुपये तोला [११.५ ग्राम] है ।

और दिशाशूल।

वैदिक साहित्य में ज्योतिष का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्योतिष को वेद के षडङ्गों में से एक माना गया है। वेदों में बहुत-से ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं जिन्हें ज्योतिष की सहायता के विना समझा ही नहीं जा सकता, परन्तु यह सारा महत्त्व गणित ज्योतिष का है, फलित का नहीं।

यहाँ गणित और फलित ज्योतिष का अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक है। गणित ज्योतिष वह विद्या है, जिसके द्वारा सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि से प्रकृति में होनेवाली घटनाओं का यथार्थ ज्ञान हो। जैसे सूर्यग्रहण कब होगा? चन्द्रग्रहण कब होगा? ऋतुओं का परिवर्तन कब और किस प्रकार होता है? दिन घटना कब आरम्भ होता है और बढ़ना कब आरम्भ होता है। गणित ज्योतिष से हम नक्षत्रों की स्थिति जानकर ऐतिहासिक घटनाओं का विज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के रूप में जिस समय महाभारत का युद्ध हुआ था, उस समय ग्रह एक युति में थे। पाश्चात्य ज्योतिर्विद बेली (Bailly) के अनुसार ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व २० फरवरी को २ बजकर २७ मिनट और ३० सेकण्ड पर ग्रह एक युति में थे, अतः महाभारत का समय ३१०२+२०००= ५१०२ वर्ष होगा। यह है ज्योतिष के अनुसार महाभारत का समय और परम्परा के अनुसार भी यही ठीक है। इस गणित ज्योतिषको आर्यसमाज मानता है।

फलित ज्योतिष क्या है? यदि जन्मलग्न में राहु हो और छठे स्थान में चन्द्रमा हो तो बालक की मृत्यु हो जाती है। यदि जन्मलग्न में शनि हो और छठे स्थान

में चन्द्रमा हो तथा सातवें स्थान में मङ्गल हो तो बालक का पिता मर जाता है। जन्मलग्न में तीसरे स्थान में भौम हो तो जितने भाई हों सभी का नाश हो जाता है। इसी प्रकार यदि रात को बच्चा उत्पन्न होगा तो अमुक प्रकार का होगा। रविवार को होगा तो अमुक प्रकार का होगा। किसी कन्या का विवाह अमुक समय में हो गया तो वह विधवा हो जाएगी, आदि-आदि। यह है फलित ज्योतिष। यह सर्वथा मिथ्या है। यह लोगों को ठगने का पाखण्ड है।

फलित ज्योतिष ने भारत के पतन एवं अकल्याण की प्रभूता सामग्री प्रस्तुत की है। यहाँ हम एक ऐतिहासिक घटना लिखने का लोभ संवरण नहीं कर सकते।

महमूद गजनवी ने भारत पर सत्रह आक्रमण किये। अन्तिम बार सन् १०२४ ई० में उसने काठियावाड़ के प्रसिद्ध मन्दिर सोमनाथ पर आक्रमण किया। सोमनाथ की रक्षा के लिए एक बहुत बड़ी सेना तैयार खड़ी थी, परन्तु परिणाम क्या हुआ, यह महर्षि दयानन्द के शब्दों में पढ़िए-

"पोप, पूजारी पुरश्चरण, स्तुति-प्रार्थना करते थे कि 'हे महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर।' और वे अपने राजाओं को समझाते थे कि 'आप निश्चिन्त रहिए। महादेवजी भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे।' वे बेचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे। कितने ही ज्योतिषी पोपों

ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया, दूसरे ने योगिनी सामने दिखाई, इत्यादि बहकावट में रहे; जब म्लेच्छों की फ़ौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे। कितने ही पोप, पूजारी और उनके चेले पकड़े गये। पूजारियों ने हाथ जोड़ यह भी कहा कि तीन करोड़ रुपया ले-लो, मन्दिर और मूर्त्ति मत तोड़ो। मुंसलमानों ने कहा कि हम 'बुतपरस्त' नहीं, क़िन्तु 'बुतशिकन' हैं, अर्थात् मूर्त्तिपूजक नहीं, किन्तु मूर्त्तिभञ्जक हैं। जाके झट मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्त्ति गिर पड़ी। जब मूर्त्ति तोड़ी तो सुनते हैं कि अठारह करोड़ के रत्न निकले। जब पूजारी और पोपों पर कोड़े पड़े तब रोने लगे। कहा कि कोष बताओ, मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट-मार-कूटकर पोप और उनके चेलों को 'गुलाम', बिगारी बना पीसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल-मूत्रादि उठवाया और चने खाने को दिये। हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए। क्यों परमेश्वर की भक्ति न की जो म्लेच्छों के दाँत तोड़ डालते और अपनी विजय करते। देखो! जितनी मूर्त्तियाँ पूजी हैं, उतनी शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती। पूजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की, परन्तु एक भी मूर्त्ति उन शत्रुओं के सिर पर उड़के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्त्ति के सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

आज कोई भी कार्य किया जाए—मुण्डन हो, यज्ञोपवीत हो, विवाह हो, दुकान का उद्घाटन हो, गृहप्रवेश हो या भवन का शिलान्यास हो—प्रत्येक बात में मुहूर्त्त देखा जाता है। ग्रह-नक्षत्र और कुण्डलियाँ मिलाई जाती हैं, परन्तु फिर भी व्यापार में घाटे हो जाते हैं, मकान बनने में भी विलम्ब हो जाता है, स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं। यह कोई कपोलकल्पना नहीं है। लीजिए, मैं प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ—

महाराज मुञ्ज ने ज्योतिषी के कहने पर अपने मन्त्री वत्सराज को भोज को मारने का आदेश दिया। उनकी बात सुनकर मन्त्री ने कहा—

त्रैलोक्यनाथो रामोऽस्ति वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः।
तेन राज्याभिषेके तु मुहूर्त्तः कथितोऽभवत्॥
तन्मुहूर्त्तेन रामोऽपि वनं नीतोऽवनीं विना।
सीतापहारोऽप्यभवद्विरिञ्चिवचनं वृथा॥
जातः कोऽयं नृपश्रेष्ठ किंजिज्ज्ञ उदरम्भरिः।
यदुक्त्या मन्मथाकारं कुमारं हन्तुमिच्छसि॥

—बल्लाल पण्डितविरचित भोजप्रबन्ध २०-२२

भगवान् ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठजी ने त्रिलोकीनाथ श्रीराम के राज्याभिषेक का मुहूर्त्त बताया था, उसी मुहूर्त्त में राम को राज्य त्यागकर वन में जाना पड़ा और वहाँ सीता भी चुरा ली गई, वसिष्ठजी का वचन असत्य ही सिद्ध हुआ, फिर इस पेटू पण्डित के कहने से आप कामदेव के समान सुन्दर भोज को क्यों मारना चाहते हो?

इसी तथ्य को सूरदासजी ने यूँ वर्णित किया है—

कर्मगत टारे नाहीं टरे।
गुरु वसिष्ठ से पण्डित ग्यानी रुचि-रुचि लगन धरी।
सीता हरन मरन दशरथ को विपत में विपत परी।।

मुहूर्त्त क्या है? महर्षि मनु के अनुसार—

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला।
त्रिंशत्कला मुहूर्त्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः।।

—मनु० १।६४

पलक झपकने का नाम निमेष है। १८ निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, **तीस कला का एक मुहूर्त्त** और तीस मुहूर्त्त का एक दिन-रात होता है।

इस प्रकार मुहूर्त्त तो काल की संज्ञा है। क्या यह किसी के ऊपर चढ़ सकता है, या किसी को खा सकता है, अथवा किसी को भस्म कर सकता है? कदापि नहीं।

यदि मुहूर्त्त देखना कोई लाभदायक बात है तो जिन लोगों में (ईसाई, मुसलमान आदि) मुहूर्त्त नहीं देखा जाता, उन्हें हानि होनी चाहिए, परन्तु यहाँ तो हिसाब ही उलटा है। हिन्दुओं में जहाँ लग्न और मुहूर्त्त देखकर विवाह किये जाते हैं, वहाँ विधवाओं की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा बहुत अधिक है। मुहूर्त्त देखने से सन्तान अधिक योग्य उत्पन्न होती हो, पति-पत्नी में अधिक प्रेम रहता हो—ऐसी बात भी दृष्टिगोचर नहीं होती। ऋषि सन्तान! भारत माता के नौनिहालो! वास्तविकता को समझो और पाखण्ड से बचो।

किसी भी कार्य को आरम्भ करने पर नवग्रहपूजा को टकापन्थी पण्डित अनिवार्य बताते हैं। नवग्रहपूजा

में भी सबसे पूर्व विघ्नविनाशक गणेश का पूजन होता है। एक मिट्टी की डली पर कलावे के दो-तीन चक्कर लगा दिये जाते हैं और उसपर धूप, दीप, नैवेद्य आदि चढ़वाया जाता है। यह भी पण्डितों के खाने-कमाने का ढोंग है। बार-बार टका चढ़वाकर ये लोग पर्याप्त राशि इकट्ठी कर लेते हैं। जड़ मिट्टी का ढेला तो अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता, दूसरे के विघ्न क्या दूर करेगा?

एक बार एक पण्डितजी किसी जाट यजमान के यहाँ पहुँच गये। जब पण्डितजी ने पहली बार टका रखवाया तो जाटजी ने रख दिया। दूसरी बार फिर टका रखने के लिए कहा तो जाट ने सोचा, पता नहीं पण्डितजी कितनी बार टका रखवाएँगे, अतः पण्डितजी का ध्यान हटते ही जाटजी ने गणेश की मूर्त्ति को उठाया और उसे पीछे की ओर फेंककर भोलेपन से पूछा, "पण्डितजी! टका कहाँ रक्खूँ?" पण्डितजी ने कहा—"यहाँ रख, इस गणेश पर।" जाटजी ने कहा—"गणेश कहाँ है, वह तो अपना टका लेते ही चला गया था।" यदि सभी व्यक्तियों में इस प्रकार की भावनाएँ जाग्रत् हो जाएँ तो ये अवैदिक प्रथाएँ समाप्त हो सकती हैं।

नवग्रहपूजा पाखण्ड है। ज्योतिषियों द्वारा स्वीकृत नवग्रह ये हैं—सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। राहु और केतु वस्तुतः ग्रह नहीं हैं। ये दोनों चन्द्रमा के मार्ग की कल्पित ग्रन्थियाँ हैं। शेष सात में भी सूर्य और चन्द्रमा ग्रह नहीं हैं। कोश में ग्रह का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—"सूर्य

की परिक्रमा करनेवाला तारा।" इस परिभाषा के अनुसार सूर्य नक्षत्र सिद्ध होता है। चन्द्रमा प्रकाशशून्य है और सूर्य की परिक्रमा न करके पृथिवी की परिक्रमा करता है, अतः यह भी ग्रह नहीं है। इस प्रकार ग्रह कुल पाँच ही रह जाते हैं। जब ग्रह पाँच ही हैं तब नवग्रहपूजा कैसी?

ज्योतिषियों ने सभी ग्रहों के लिए वेदमन्त्र खोज निकाले हैं। यहाँ सभी की समीक्षा का तो स्थान नहीं है, परन्तु पाखण्ड के भण्डाफोड़ के लिए दो-तीन मन्त्रों पर विचार करेंगे।

शनि के लिए जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह इस प्रकार है—

शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शँयोरभि स्त्रवन्तु नः॥　　—यजुः० ३६।१२

इस मन्त्र में 'शनि' पद ही नहीं है। उव्वट और महीधर ने भी इस मन्त्र का भाष्य करते हुए इसका शनिग्रह-परक अर्थ नहीं किया है। मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है—

सबका प्रकाशक, सबको आनन्द देनेवाला और सर्वव्यापक ईश्वर मनोवाञ्छित आनन्द के लिए और पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए हमारे लिए कल्याणकारी हो। वह प्रभु हमपर सब ओर से सुखों की वृष्टि करे।

अब केतु का मन्त्र देखिए—

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः॥　　—यजुः० २९।३७

इस मन्त्र में 'केतु' शब्द पड़ा हुआ है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, परन्तु इसका 'केतुग्रह' के साथ

निश्चितरूपेण कोई सम्बन्ध नहीं है। उव्वट ने 'केतु' का अर्थ 'प्रज्ञान' किया है और महीधर ने 'ज्ञान' अर्थ किया है। मन्त्र का ठीक अर्थ यह होगा—

हे विद्वान् पुरुष! अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करते हुए और धनहीन मनुष्यों को धन प्रदान करते हुए तू अज्ञान और दरिद्रय का नाश करनेवाले तेजस्वी पुरुषों के साथ उत्तम प्रकार से प्रसिद्ध हो।

"उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि।" —यजुः० १५।५४

इस मन्त्र को पाखण्डियों ने बुध का मन्त्र बना दिया। इस मन्त्र में 'बुध' शब्द ही नहीं है। यहाँ 'उद्बुध्यस्व' क्रियापद है। इसका अर्थ है—उद्बुद्ध हो। बुध का इस मन्त्र से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

जिन मन्त्रों का पाठ नवग्रहपूजा में होता है जब वे मन्त्र ही नवग्रहपूजा के नहीं हैं तो यह पूजा और फल सभी कुछ व्यर्थ हुआ, अतः बुद्धिमानों को इस पाखण्ड से बचना चाहिए।

ग्रह किसी के ऊपर चढ़ जाते हैं, यह भी मिथ्या है। दो व्यक्ति लो, जिनमें एक के ग्रह (ज्योतिषियों के अनुसार) क्रूर हों और दूसरे के सौम्य। इन दोनों को ज्येष्ठ मास में जब ऊपर से सूर्य अग्नि बरसाता हो और नीचे से भूमि अग्नि उगलती हो, तब यमुना की रेती पर नंगे पैर चलाओ। जिसपर ग्रह क्रूर हैं उसके पैर और शरीर जलने चाहिएँ और जिसके सौम्य हैं उसके न जलने चाहिएँ। क्या ऐसा कभी हो सकता है? कदापि नहीं।

फलित-ज्योतिष का एक अङ्ग दिशाशूल भी है। दिशाशूल का अर्थ है कि विशेष दिनों में विशेष दिशा

की यात्रा करना उत्तम है और अमुक दिनों में अमुक दिशाओं में जाना हानिकारक है। पाखण्डियों ने अद्भुत गप्पें गढ़ी हुई हैं, जैसे बुधवार को स्त्री को ससुराल नहीं भेजना चाहिए। इसी प्रकार यदि वधू को शुक्रवार को ससुराल भेज दिया जाए तो गर्भपात हो जाता है। यह सब भी वहम और पाखण्ड ही है।

एक बार ऐसा हुआ कि स्वयं पण्डितजी को अपनी लड़की को शुक्रवार को ससुराल भेजना पड़ा। लोगों ने कहा पण्डितजी आप तो शुक्रवार को ससुराल भेजने के लिए मना करते थे फिर आपने कैसे भेज दिया? पण्डितजी ने कहा, "वसिष्ठ गोत्रवालों को कोई दोष नहीं होता।" पाठकगण! यदि वसिष्ठ गोत्रवालों को दोष नहीं होता तो औरों को क्या दोष हो सकता है? सावधान! इन ज्योतिषियों की चालों से बचो।

यदि विशेष दिन में दिशाविशेष में नहीं जाना चाहिए तो उस दिन उस दिशा में जानेवाली सभी मोटरें, कारें, ट्रक, रेलगाड़ियाँ और वायुयान बन्द कर देने चाहिएँ, परन्तु हम देखते हैं कि रेलें और मोटरें प्रतिदिन प्रत्येक दिशा में जाती हैं। यदि दिशाशूल का कोई प्रभाव होता तो उस दिन गड़ियों की टक्कर होकर सारे यात्रियों की मृत्यु हो जानी चाहिए थी।

ज्योतिषी लोग अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह तो लग्न देख-दाखकर और कुण्डली आदि मिलाकर ही करते हैं, फिर उनकी लड़कियाँ विधवा क्यों हो जाती हैं? ज्योतिषियों के अपने लड़के क्यों मर जाते हैं? इनके लड़के परीक्षाओं में फेल क्यों हो जाते हैं? ये ज्योतिषी पृथिवी में गड़े धन को जानकर स्वयं उसे

क्यों नहीं निकाल लेते? व्यापार में तेजी-मन्दी को जानकर स्वयं करोड़पति क्यों नहीं हो जाते?

यदि यह फलित-ज्योतिष सच्चा होता तो इन ज्योतिषियों को पटड़ी पर बैठने की आवश्यकता न रहती। यदि इनकी भविष्यवाणियाँ सच्ची होतीं तो इन सबको सी०आई०डी० (गुप्तचर) विभाग में कार्य मिलता अथवा ये चोरों का पता लगाकर और पुलिस को बताकर मालामाल हो जाते। ९ फरवरी, १९६५ को पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री कैरों की निर्मम हत्या की गई थी। हत्यारों का पता लगाने के लिए ५० सहस्र रुपये की घोषणा की गई थी। कोई भी ज्योतिषी न बता सका कि कैरों का हत्यारा कौन है?

विभाजन से पूर्व भारतवर्ष में ६०० राजा थे। उन सभी ने ज्योतिषी पाल रखे थे। किसी ज्योतिषी ने अपने महाराज से यह नहीं कहा—"महाराज! सावधान हो जाओ। अपना कोई प्रबन्ध कर लो। यह राज्य आपसे छिननेवाला है। पटेलरूपी राहु आपको ग्रसनेवाला है।" चलो, राजाओं को न बताया तो कोई बात नहीं, उन्होंने अपना भी कुछ प्रबन्ध नहीं किया। करते तो तब जब उन्हें भविष्य का कुछ ज्ञान होता।

आजकल भृगु-संहिता के नाम से भी एक पाखण्ड पनपने लगा है। प्रत्येक भृगु-संहितावाला कहता है कि मेरी संहिता ही प्रामाणिक है, शेष सब मिथ्या हैं। प्रत्येक अपनी संहिता को सच्ची और दूसरों की संहिता को झूठी बताता है, अतः ये सभी झूठे हैं।

इस फलित ज्योतिष के अन्तर्गत ही हस्तरेखा भी है। यह भी मिथ्या है। अनेक लोग ज्योतिषियों को अपना

हाथ दिखाकर अपने को ठगाते हैं। आपके हाथ में क्या है? लीजिए, एक ऐतिहासिक, महत्त्वपूर्ण एवं शिक्षाप्रद घटना पढ़िए—

एक बार एक युवक महर्षि दयानन्द के पास गया और अपना हाथ आगे बढ़ाकर कहने लगा—"स्वामीजी! देखिए, मेरे हाथ में क्या है?" स्वामीजी ने उसके हाथ को देखते हुए कहा—"इसमें खून है, मांस है, चर्बी है, चाम है, हड्डियाँ हैं और क्या है?"

हमारे हाथ में क्या है? वेद कहता है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्॥

—अथर्व० ७।५०।८

मेरे दायें हाथ में कर्म है और बायें हाथ में विजय है। मैं अपने कर्मों के द्वारा गौ, भूमि, अश्व, धन और स्वर्ण का विजेता बनूँ।

यदि आप रेखाओं के भरोसे ही बैठे रहे तो कुछ नहीं होगा। कर्म द्वारा, प्रबल पुरुषार्थ द्वारा आप सारे संसार का शासन भी कर सकते हैं, अतः कर्म करो।

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता और विधाता स्वयं है। ज्योतिष के द्वारा आपके भाग्य का निर्माण नहीं हो सकता। ज्योतिषी आपको धन और सम्पत्ति नहीं दे सकते। अपना उद्धार करने के लिए स्वयं लंगर-लंगोटे कसकर खड़े हो जाओ। महर्षि दयानन्द के इन वचनों को सदा स्मरण रखो—

"जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रङ्क होते हैं, वे अपने कर्मों से होते हैं, ग्रहों से नहीं।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

बौद्ध और जैनधर्म का मिथ्या अहिंसावाद

बौद्ध और जैन-मतावलम्बियों का मिथ्या अहिंसावाद भारत की अवनति और विनाश का तीसरा प्रमुख कारण है।

वैदिक साहित्य में अहिंसा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। योगदर्शनकार महर्षि पतञ्जलि ने यमों में अहिंसा को सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया है, क्योंकि अहिंसा की सिद्धि के बिना उपासना सफल नहीं हो सकती। महाभारतकार महर्षि व्यास ने तो यहाँ तक कह दिया है-

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परमो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥

—महा० अनु० ११६।२८

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा ही परम तप हैं।

अहिंसा का अर्थ है—वैरत्याग—मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी के प्रति वैर की भावना न रखना। वेद में तो इससे भी ऊँची भावना है। वेद-भक्त की तो यह प्रार्थना और कामना रहती है-

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥

—यजुः० ३६।१८

मैं संसार के सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ।

परन्तु यहाँ एक बात स्मरण रखने योग्य है। यह

तो सामान्य उपदेश है। जिस समय गुण्डे और अत्याचारी अबलाओं पर अत्याचार कर रहे हों, जिस समय बलवान् निर्बलों को पीड़ा दे रहे हों, जिस समय शत्रु हमारे राष्ट्र पर आक्रमण कर रहे हों तब हम क्या करें? क्या आततायी, गुण्डों और शत्रुओं से मार खाते हुए, उनसे पिटते हुए **'अहिंसा परमो धर्मः'** की दुहाई देते रहें? नहीं, कदापि नहीं। शत्रुओं से हमारा व्यवहार कैसा हो? वेद का स्पष्ट आदेश है—

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत॥

—अथर्व० ११।१०।१

हे वीर योद्धाओ! आप अपने झण्डों को लेकर उठ खड़े होओ और कमर कसकर तैयार हो जाओ। जो सर्पों के समान कुटिल हैं, मानव-समाज के शत्रु हैं, राक्षस हैं, ऐसे शत्रुओं पर धावा बोल दो।

वेद में राजा के लिए आज्ञा है—

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥

—अथर्व० ८।४।२४

हे इन्द्र! देश के शासक, राजा वा नेता! डाकु, लुटेरे और हिंसकों की गर्दनों को ततवार से काटकर धड़ से अलग कर दे। ऐसे आततायी चाहे वे स्त्रियाँ हों या पुरुष सबके लिए एक ही दण्ड है। दुष्टों के मारने में विलम्ब नहीं करना चाहिए। उनका सफ़ाया इतनी शीघ्र कर देना चाहिए कि वे दूसरे दिन सूर्य का दर्शन न कर सकें।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कहा है—

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति॥
—अथर्व० १।२१।२

हे इन्द्र! राजन्! सेना लेकर हमपर आक्रमण करनेवाले शत्रुओं का नाश कर। हमारे शत्रुओं को नीचा दिखा। जो हमारा विनाश करना चाहता है, जो हमें दास बनाना चाहता है, उसे घोर अन्धकार में धकेल दे।

इस प्रकर के शतशः वेदमन्त्र उपस्थित किये जा सकते हैं, परन्तु विस्तार-भय से अधिक नहीं लिखते। वेद की इन्हीं भावनाओं और आदेशों के अनुसार महर्षि मनु ने भी कहा है—

नाततायी वधे दोषः॥ —मनु० ८।३५१

अर्थात् आततायी का वध करने में कोई दोष नहीं है। इतना ही नहीं मनुजी ने तो यहाँ तक लिख दिया है—

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥
—मनु० ८।३५०

आततायी को तो बिना विचारे मार देना चाहिए।

यह है अहिंसा और हिंसा के सम्बन्ध में वैदिक विचारधारा। जो इस विचारधारा पर आचरण करते हैं वे फूलते-फलते हैं, जीवन में सुख पाते हैं और सर्वविध उन्नति करते हैं। इस विचारधारा को न अपनाकर, इस विचारधारा के प्रतिकूल चलने पर हानि उठानी पड़ती है। हमारा प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने वैदिक हिंसा के आदर्श

को सम्मुख रखकर गौ और ब्राह्मण के कल्याण के लिए तथा देश की रक्षार्थ ताटका का वध किया। मारीच और सुबाहु को यमलोक पठाया और अन्त में रावण का काम भी तमाम कर दिया। परिणाम क्या हुआ—ऋषियों की रक्षा और रामराज्य की स्थापना।

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने तो वैदिक हिंसा के आदर्श को सम्मुख रखकर शिशुपाल का वध किया, हयग्रीव और निशुम्भ को नष्ट किया तथा जरासन्ध, कर्ण और दुर्योधन को मरवाया। परिणाम क्या हुआ? भारतवर्ष में सहस्त्रों वर्षों तक अखण्ड चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना हुई।

अब केवल अहिंसा अपनाने के जो भयंकर दुष्परिणाम हुए उनका भी अवलोकन कर लीजिए। भारतवर्ष में महात्मा बुद्ध और वर्धमान महावीर दो ऐसे महापुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने केवल अहिंसा को ही परम धर्म माना। इन दोनों महापुरुषों ने अहिंसा पर बड़ा बल दिया। दोनों ही महानुभावों ने युद्ध का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि "अपनी ही अन्तरात्मा के साथ युद्ध करो, बाहर के युद्ध से क्या लाभ?"

उच्चावस्था में पहुँचा हुआ योगी, साधु या महात्मा यदि अपने जीवन में केवल अहिंसा को अपनाये तो जगत् की कोई हानि नहीं। महात्मा बुद्ध और श्री महावीर भी अहिंसा को यदि अपने तक ही सीमित रखते तो देश और जाति की कोई हानि न होती, परन्तु उन्होंने प्रत्येक अवस्था में और प्रत्येक मनुष्य में सामूहिक रूप में अहिंसा की भावना उत्पन्न की, जिसका परिणाम

यह हुआ कि करोड़ों क्षत्रिय वीर केवल अहिंसा का आश्रय लेकर बौद्ध भिक्षुक और जैन श्रावक बनकर कायर, डरपोक, भीरु और नपुंसक बन गये।

सन् ६३० में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वैन्त्साङ्ग भारत में आया तो उसने लिखा कि कप्पिश (काफिरस्तान) सारा बौद्ध हो गया था। लम्पाक और नगर (जलालाबाद) में कुछ हिन्दुओं को छोड़कर शेष सारा काबुल बौद्ध हो गया था। बंगाल और बिहार तो बौद्धों के प्रमुख गढ़ बन गये थे। बंगाल और बिहार में जैन और बौद्ध मत का हिंसा के विरुद्ध इतना प्रचार था कि बंगाल और बिहार के निवासी सेना में भरती नहीं होते थे। इस झूठी अहिंसा का परिणाम यह हुआ कि लोगों के जीवनों में शत्रुओं के दमन की, देश, जाति और धर्म की रक्षा की भावना नष्ट हो गई। परिणामस्वरूप देश परतन्त्र एवं पराधीन हुआ।

इस्लामी आक्रमण आरम्भ हुए। काबुल जो सारा-का-सारा बौद्ध बन गया था शत्रुओं के आक्रमण का प्रतिरोध न कर सका। मार खाते हुए, पिटते और पददलित होते हुए सारे बौद्ध मुहम्मदी मत में प्रविष्ट हो गये।

जब मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया तो वहाँ के बौद्ध भिक्षु धीरे-धीरे मुसलमान बन गये। शिवि (जो अब पाकिस्तान में है और जिसे अब सिबी कहते हैं) पर जब कासिम ने आक्रमण किया तो वहाँ का शूरवीर क्षत्रिय राजा शत्रुओं का मुक़ाबिला करने के लिए क़िले पर खड़ा हो गया। नागरिकों ने, जो प्रायः बौद्ध और जैन थे, राजा से प्रार्थना की कि युद्ध करना और शत्रुओं

को मारना हमारे धर्म के विरुद्ध है, अतः आप युद्ध न करके शत्रु से सन्धि कर लें। जब वीर वत्सराज ने इनका कायरतापूर्ण परामर्श स्वीकार नहीं किया तो इन्होंने शत्रु को सन्देश भेजा कि यदि तुम बौद्धों को न मारने की प्रतिज्ञा करो तो हम नगर का पिछला द्वार खोल देंगे। कासिम ने इसे स्वीकार कर लिया। बौद्ध-भिक्षुओं ने नगर के पिछले द्वार खोल दिये। कासिम सैनिकोंसहित नगर में प्रविष्ट हो गया। मुसलमान सैनिकों ने थोड़े-से बौद्ध भिक्षुओं को छोड़कर प्रजा को खूब लूटा। अनेक व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया और शेष सबको दास बना लिया।

—देखिए History of India by C.V. Vaidya

बिहार में बौद्ध भिक्षुओं के सैकड़ों विहार (मठ) थे, इस कारण उसका नाम ही 'बिहार' पड़ गया। इस प्रान्त में नालन्दा और विक्रमशिला बौद्ध भिक्षुओं के दो विश्वविद्यालय थे। उनमें लाखों हस्तलिखित एवं बहुमूल्य ग्रन्थ थे और यहाँ सहस्त्रों बौद्ध भिक्षु शिक्षा प्राप्त करते थे। सन् ११९७ में मुहम्मद बिन बख्त्यार ख़िल्जी ने केवल २०० सैनिक लेकर पहले नालन्दा और फिर विक्रमशिला पर आक्रमण किया। बौद्ध भिक्षुओं को जब आक्रमण का पता लगा तो सहस्त्रों भिक्षु सिर मुँडाकर, पीले वस्त्र पहनकर, हाथ में माला लिये हुए, **'अहिंसा परमो धर्मः'** और **'नमो बुद्धाय'**—का जाप करते हुए धर्मान्ध मुसलमानों से प्रार्थना करने लगे कि हमपर दया करो। मुसलमान सैनिकों ने कई सहस्त्र भिक्षुओं को गाजर-मूली की भाँति काटकर मृत्यु की गोद में सुला दिया।

नालन्दा का हत्याकाण्ड पूर्ण करके ये मुसलमान विक्रमशिला विश्वविद्यालय में पहुँचे। वहाँ भी यही हुआ। वे भिक्षु जप करते रहे और मुसलमान उन्हें तलवार का निशाना बनाते रहे। बौद्ध भिक्षु बिना किसी प्रकार का प्रतिरोध किये सिर झुकाकर कटते रहे। भिक्षुओं को समाप्त कर बख्त्यार ख़िल्जी ने उन दोनों विश्वविद्यालयों की लाखों बहुमूल्य पुस्तकों को जलाकर भस्म कर दिया। —देखिए History of India by Elliot

पाठकगण! यह है भीरुता की पराकाष्ठा! शत्रु आक्रमण कर रहा है और बौद्ध भिक्षु सिर झुकाये मर और कट रहे हैं। यदि ये सहस्रों भिक्षु बिना अस्त्र-शस्त्रों के लात और घूँसों से भी शत्रु पर आक्रमण करते तो २०० मुसलमानों की बोटी भी देखने में नहीं आती। २०० मुसलमानों ने सहस्रों बौद्धों को सदा के लिए भूमि पर सुला दिया। यह है जैन-बौद्धों की झूठी अहिंसा का दुष्परिणाम।

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया, भारत को लंगड़ी स्वतन्त्रता मिल गई। भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया, परन्तु भारत में मुर्दा बौद्धमत को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयत्न आरम्भ हुए। हमारे राष्ट्रीय-ध्वज में अशोक-चक्र को अपनाया गया। अशोक बौद्ध था, यह तो सर्वविदित ही है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता से विमुख पं० जवाहरलाल नेहरू भारत को अवनति के गढ़े में गिराने के लिए जैन और बौद्धो की झूठी अहिंसा, दया और मैत्रीभाव का अन्धानुकरण जीवनभर करते रहे। चीन का उदाहरण हमारे सामने है। नेहरूजी नरपिशाच चीनी कम्युनिस्टों

के प्रति शान्ति और सद्व्यवहार का बर्ताव करते रहे। इतना ही नहीं शान्ति और मैत्री बनाये रखने के लिए उन्होंने तिब्बत में जो सदा से भारत का अङ्ग रहा है, चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार करने तक की भयंकर भूल की। चीन ने धीरे-धीरे हमारी १२,००० वर्गमील भूमि अपने अधिकार में ले-ली। नेहरूजी ने वैदिक हिंसा को अपनाकर ऐसे दुष्ट और आततायी का सिर नहीं फोड़ा, अपितु 'शान्ति-शान्ति' ही चिल्लाते रहे। इस शान्ति और सद्भावना का लाभ उठाकर विश्वासघाती चीन ने अक्तूबर सन् १९६२ में भारत पर सशस्त्र आक्रमण कर भारत की २२,००० वर्गमील भूमि हथिया ली। सैकड़ों सैनिक मारे गये।

आज पाकिस्तान आये दिन भारत की सीमाओं पर गोली चलाता है। गोली ही नहीं चलाता वह कच्छ में घुस आया है और अब तो उसने कश्मीर में भी घुसपैठ आरम्भ कर दी है, परन्तु भारत के ये कायर, दब्बू और भीरु शासक केवल विरोध-पत्र भेजकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। अब तो विरोध-पत्रों से पाकिस्तान की अलमारियाँ भर गई होंगी, और उनके पास भारत के विरोध-पत्रों को रखने की जगह भी नहीं होगी, अतः विरोध-पत्र न भेजकर अब तो कुछ करने की आवश्यकता है। अब तो गोली का उत्तर गोली से देने से ही देश का कल्याण हो सकता है।

यहाँ हम विवेकानन्दजी के शब्दों में यह कहे बिना नहीं रह सकते—

"अहिंसा परमो धर्मः" बौद्ध धर्म का एक बहुत अच्छा सिद्धान्त है, परन्तु अधिकारी का विचार न करके

जबरदस्ती राज्य की शक्ति के बल पर उस मत को सर्वसाधारण पर लादकर बौद्ध धर्म ने देश का सर्वनाश किया है। —विवेकानन्द साहित्य, भाग ६ पृ० १४३

जैन और बौद्धों के झूठे अहिंसावाद से देश का सत्यानाश हुआ है, हो रहा है तथा आगे भी होगा, अतः इसे तिलाञ्जलि देकर और वैदिक अहिंसावाद के अपनाने पर ही देश उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होगा।

शङ्कराचार्य का जगन्मिथ्यावाद

एक और विनाशकारी एवं मिथ्या विचारधारा जो इस समय भारतवर्ष में फैल रही है और जिसने भारत को पतन के गहरे गढ़े में धकेला है, वह है—जीव और ब्रह्म एक ही हैं। यह संसार झूठा है, मिथ्या है, स्वप्न के सदृश है। अनेक साधु-संन्यासी, महन्त और गद्दीधारी, मिशन तथा मठ और वेदान्त-सम्मेलन इस मिथ्या विचारधारा के प्रसार और प्रचार में जुटे हुए हैं।

इस विचारधारा के आदि प्रवर्तक थे गौडपादाचार्य। पीछे चलकर श्री शंकराचार्य ने इस मत का प्रभूत प्रचार किया। शंकराचार्य के प्रचार से बौद्ध और जैनमत का तो उन्मूलन हो गया, परन्तु अद्वैतवाद अथवा जगन्मिथ्यावाद की जड़ जम गई। श्री शंकराचार्य का यह मत वेद, दर्शन और उपनिषदों के सर्वथा प्रतिकूल है। वेद में त्रैतवाद का प्रतिपादन है। देखिए—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥

—ऋ० १।१६४।२०

सुन्दर गतिवाले, व्याप्य-व्यापकभाव से संयुक्त, मित्रों के समान वर्त्तमान जीवात्मा और परमात्मा प्रकृतिरूपी वृक्ष पर बैठे हुए हैं। उन दोनों में से जीव तो संसाररूपी वृक्ष के फलों को स्वाद लेकर खाता है और दूसरा परमात्मा वृक्ष के फलों को न भोगता हुआ साक्षिमात्र है।

इस मन्त्र से ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन अनादि सत्ताएँ स्पष्ट सिद्ध हैं। इस प्रकार के और भी अनेक मन्त्र दिये जा सकते हैं, परन्तु पुस्तक का कलेवर आज्ञा नहीं देता।

शंकराचार्य के दादा गुरु गौडपादाचार्य का कहना है कि **"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"** (गौ०का० २।३२) अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। क्या जगत् झूठा है? यदि वेदादि शास्त्रों का अवलोकन किया जाए तो पता चलेगा कि जगत् झूठा और मिथ्या नहीं है अपितु सत्य है, ध्रुव है। वेद में कहा है—

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम्॥

—ऋ० १०।१७३।४

राजा का अभिषेक करते हुए पुरोहित उसे आशीर्वाद देते हुए कहता है—सूर्य ध्रुव है (सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला है, अपनी कीली पर घूमता है, किसी अन्य ग्रह की परिक्रमा नहीं करता), 'पृथिवी भी ध्रुव है' कहने का आशय है कि यहाँ अनेक राजा, महापुरुष, योगी, तपस्वी, ज्ञानी और ध्यानी आते हैं, वे सब काल के गाल में चले जाते हैं, परन्तु पृथिवी जहाँ-की-तहाँ रहती है)। पर्वत भी स्थिर और अचल हैं। यह समस्त

जगत् भी ध्रुव है, सत्य है। इसी प्रकार यह राजा भी प्रजाओं में स्थिर और उन्हें धारण करनेवाला हो।

इस मन्त्र में जगत् को, संसार को ध्रुव–नित्य, सत्य कहा गया है। ऋग्वेद में ही अन्यत्र कहा है–

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

–ऋ० १०।१९०।३

धाता=सर्वधारक परमेश्वर सूर्य–चन्द्रमा आदि पदार्थों का निर्माण ठीक उसी प्रकार करता है, जैसा पूर्वकल्प में किया था। यजुर्वेद में कहा है–

याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्। –यजुः० ४०।८

परमात्मा ने पदार्थों का याथातथ्य निर्माण किया।

हम पूछना चाहते हैं कि जो पदार्थ पूर्वकल्प के समान हैं, याथातथ्य हैं, क्या वे कभी मिथ्या हो सकते हैं?

जो नवीन वेदान्ती यह कहते हैं कि जगत् मिथ्या है, भ्रम है, मायाजाल है, धोखे की टट्टी है, हम उनसे पूछना चाहते हैं कि क्या सड़कों पर दौड़नेवाले इक्के और ताँगे, साइकिलें और मोटर–साइकिलें, मोटरें और कारें सब मिथ्या हें? क्या ये आकाश में उड़ते हुए विमान झूठे हैं? ये हाट और हवेलियाँ, ये आश्रम और मठ क्या सब मायाजाल है? क्या माता–पिता, स्त्री और पुत्र– सब–कुछ धोखा है।

"माता–पिता सारे झूठे हैं, झूठा है संसार"–इस प्रकार के उपदेशों से जीवन का निर्माण नहीं हो सकता। माता–पिता झूठे, नाते और रिश्तेदार झूठे और संसार झूठा, संसार में मेरा कोई नहीं, इस सबका तात्पर्य क्या है? क्या हमें जन्म देनेवाले, हमारा पालन और पोषण

करनेवाले, हमें शिक्षित और दीक्षित करनेवाले माता-पिता भी झूठे और धोखा देनेवाले हैं? क्या सारा संसार मक्कारों से भरा हुआ है?

जो लोग **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'** का नारा लगाते हैं, उनका आधार इतना कच्चा है कि एक झटके में धराशायी हो जाता है। एक बार एक वेदान्ती महर्षि दयानन्द के पास पहुँचा और लगा जगत् को मिथ्या बताने। महर्षि दयानन्द उसे युक्तियों से समझाते रहे। जब वह युक्तियों से न माना और कुतर्क ही करता रहा तो स्वामीजी ने उसके गाल पर हल्का-सा चपत लगा दिया। चपत खाकर वेदान्तीजी कहने लगे—"स्वामीजी! यदि कोई आपकी विचारधारा को नहीं मानता तो यह तो उचित नहीं कि आप उसके चपत मारकर अपना सिद्धान्त मनवाएँ।" स्वामीजी बोले—"मैंने तुम्हें चपत कब मारा था? ब्रह्म ने ब्रह्म को मारा।" वेदान्तीजी के वेदान्त का सारा नशा उतर गया और उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली।

एक और घटना पढ़िए। एक बार एक वेदान्ती आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वामी वेदानन्दजी के पास आया और कहने लगा—"यह सारा संसार झूठा है, बस, ब्रह्म ही सत्य है।" स्वामीजी ने पूछा—"संसार में क्या है?" वेदान्ती बोला—"यह जो कुछ भासमान हो रहा है, जो कुछ दीख रहा है, सूर्य चन्द्र, पृथिवी, भवन, महल, कोठियाँ, कारें—सब-कुछ झूठा है।" स्वामीजी ने प्रश्न किया—"तुम भी संसार में हो या नहीं?" वेदान्ती ने उत्तर दिया—"हाँ-हाँ, मैं भी संसार में हूँ।" स्वामीजी ने कहा—"जब तुम भी संसार में

हो तो तुम भी झूठे और तुम्हारी बात भी झूठी हुई और सच्ची बात यह हुई कि 'जगत्सत्यं ब्रह्म मिथ्या'—जगत् सच्चा है और ब्रह्म झूठा है।" वेदान्ती स्वामीजी का मुँह ताकता रह गया।

वेदान्ती कहते हैं कि संसार स्वप्न के समान झूठा है। संसार की उपमा स्वप्न से देना ठीक नहीं है। जो पदार्थ प्रत्यक्ष दिखाई देता है उसकी उपमा स्वप्न से कैसे दी जा सकती है? साथ ही स्वप्न में जो पदार्थ देखे जाते हैं उनकी सत्ता का अभाव नहीं होता। दूसरे, स्वप्न देखे और सुने पदार्थों के आते हैं, चाहे वे इस जन्म में देखे हों अथवा पूर्वजन्म में। इसके लिए सबसे प्रबल युक्ति यह है कि आज तक किसी व्यक्ति ने स्वप्न में अपने-आपको टट्टी खाते हुए या पेशाब पीते हुए नहीं देखा है, क्योंकि मनुष्य कभी ऐसी कल्पना भी नहीं करता।

जगत् को मिथ्या सिद्ध करने के लिए वेदान्ती साँप और रस्सी का दृष्टान्त दिया करते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अन्धकार और प्रकाश के मेल में रस्सी को साँप समझकर मनुष्य डर जाता है, परन्तु प्रकाश होने पर सर्प का भय समाप्त हो जाता है, रस्सी-को-रस्सी समझ लेता है, इसी प्रकार ब्रह्म में जगत् की झूठी प्रतीति है। ब्रह्म के साक्षात् होने पर जगत् की निवृत्ति होकर केवल ब्रह्म की ही प्रतीति रहती है। यह दृष्टान्त भी वेदान्तियों के पक्ष का पोषक नहीं है। वेदान्ती तो केवल एक ही सत्ता को स्वीकार करते हैं, परन्तु यहाँ तो चार सत्ताएँ हो गईं—१. रस्सी, २. सर्प, ३. प्रकाश और अन्धकार का मेल, ४. द्रष्टा।

दूसरा आक्षेप यह है कि जगत् का भान किसको हुआ? यदि कहा जाए कि जीव को, तो फिर हमारा प्रश्न होगा कि जीव कहाँ से आया? इसपर मायावादी कहते हैं कि यह सब अज्ञान के कारण होता है। इसपर हमारा आक्षेप होगा कि अज्ञान (भ्रम) किसको हुआ और कहाँ से आया? वेदान्ती कहते हैं कि अज्ञान (अविद्या, माया) अनादिकाल से चला आया है और ब्रह्म में रहता है। यदि ऐसा माना जाए तो ब्रह्म अज्ञानी सिद्ध होगा। इसके अतिरिक्त अविद्या को सर्वव्यापी, सर्वज्ञ का गुण मानें या अल्पज्ञ का? यदि अविद्या सर्वज्ञ का गुण है तो यह ठीक नहीं, क्योंकि ब्रह्म में अविद्या हो ही नहीं सकती औ यदि अल्पज्ञ का गुण माने तो सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ अल्पज्ञ जीव भी स्वीकार करना पड़ेगा।

इस लचर सिद्धान्त ने भारतवासियों को भीरु, कायर और डरपोक बना दिया। जब संसार है ही नहीं और सभी ब्रह्म हैं तब हमपर हिन्दुओं ने राज्य किया तो क्या और मुसलमानों ने राज्य किया तो क्या? इस हीन और अवैदिक भावना ने भारत का सत्यानाश किया है। जगन्मिथ्यावाद के प्रभाव से आर्यजाति में उद्यमहीनता, अकर्मण्यता., उदासीनता और झूठे वैराग्य ने जन्म लिया। सन्तानों में माता-पिता के प्रति आस्था समाप्त हो गई। पति पत्नियों को छोड़ वैरागी हो गये।

इस सिद्धान्त का हिन्दूसमाज के चरित्र पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। आज मठों और आश्रमों में जो अनाचार और व्यभिचार दृष्टिगोचर होता है, उसका कारण यह 'जगन्मिथ्यावाद' का सिद्धान्त ही है।

एक मठ में एक गुरु और चेला दोनों रहते थे।

शिष्य की पत्नी अत्यन्त रूपवती थी। एक दिन शिष्य कहीं गया हुआ था। गुरु ने शिष्य की पत्नी के साथ आनन्दपूर्वक विहार किया। चेले को पता लगा और उसने गुरु से इस विषय में चर्चा की तो गुरु ने कहा—'ब्रह्म ने ब्रह्म के साथ भोग किया।' शिष्य चुप हो गया। एक दिन गुरुज़ी कहीं दूर निकल गये। शिष्य ने गुरुवाइन को पकड़कर उसके साथ सहवास किया। गुरु को पता लगा और वे शिष्य को डाँटने लगे तो शिष्य ने कहा—"हमने क्या किया, ब्रह्म को ब्रह्म का स्पर्श हुआ।" गुरुजी चुप होकर बैठ गये।

नवीन वेदान्त की विचारधारा अवैदिक है। यह मनुष्य को अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीन बनाती है। यह मनुष्य में झूठा वैराग्य उत्पन्न कर व्यभिचार को बढ़ावा देती है। इस विचारधारा से मनुष्य कायर और भीरु बनता है, अतः इस विचारधारा को शीघ्र तिलाञ्जलि दे देनी चाहिए। तभी देश और जाति का उत्थान एवं उद्धार होगा।

अवतारवाद अर्थात् नपुंसकवाद

जब अधर्म की वृद्धि हो जाती है और धर्म का ह्रास होता है, तब ईश्वर अवतार धारण करता है, ईश्वर इस धराधाम पर अवतार लेता है। इसकी पुष्टि में लोग गीता के निम्न श्लोकों को प्रस्तुत किया करते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—गीता ४।७-८

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है तथा अधर्म, अनाचार और अत्याचार बढ़ जाता है, तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधुओं के रक्षण के लिए, दुष्टों के दलन के लिए और धर्म की स्थापना के लिए मैं प्रत्येक युग में उत्पन्न होता हूँ।

यह विचारधारा वेद के प्रतिकूल तो है ही, स्वयं गीता और श्रीकृष्ण के सिद्धान्तों के भी प्रतिकूल है। इतना ही नहीं, इन श्लोकों पर तनिक विचार करने से भी यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाएगी कि इन श्लोकों से अवतारवाद सिद्ध नहीं होता।

चारों वेदों में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है, जहाँ ईश्वर को शरीरधारी कहा हो। वेद में तो ईश्वर को **'अकायमस्नाविरम्'** (यजुः० ४०।८) शरीर और नस-नाड़ी के बन्धन से रहित कहा गया है। अन्यत्र उसे **'अजः'** (ऋ० ७।३५।१३) कभी जन्म न लेनेवाला कहा गया है। उपनिषदों में भी ईश्वर का ऐसा ही स्वरूप वर्णित किया गया है।

श्रीकृष्ण अत्यन्त उद्योगी, पुरुषार्थी और परिश्रमी महापुरुष थे। उनका तो उपदेश था—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

—गीता २।३

श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते समय मानो प्रत्येक मनुष्य को उद्‌बोधन देते हुए कह रहे हैं—नपुंसक, कायर एवं भीरु मत बन। यह तेरे योग्य नहीं है। हे शत्रुओं को सन्ताप देनेवाले! हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए, जीवन-संग्राम में संघर्ष के लिए खड़ा

हो जा।

श्रीकृष्ण ने गीता का जो उपदेश दिया वह इतना विस्तृत नहीं हो सकता। युद्ध के अवसर पर जहाँ दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार खड़ी हैं और युद्ध आरम्भ होनेवाला है, वहाँ इतने लम्बे व्याख्यान का अवसर कहाँ? श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया था वह तो गीता के दूसरे अध्याय के ३८वें श्लोक तक प्रायः समाप्त हो जाता है। युद्ध के अवसर पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आत्मा की अमरता का सन्देश देकर उसे युद्ध में प्रवृत्त कराया था। आत्मा की अमरता का सन्देश ही गीता का सार और प्राण है।

जब भारत में नाना पन्थ और मत फैले तो हमारे सभी ग्रन्थों में मिलावट की गई। गीता भी इस मिलावट से अछूती न रह सकी। प्रत्येक मतवादी ने अपने अभिप्राय के अनुकूल श्लोकों की रचना कर उन्हें इसमें मिला दिया। इस प्रकार सत्तर श्लोकों की गीता सात सौ श्लोकों की हो गई।

श्रीकृष्ण वेद और वेदाङ्ग के मर्मज्ञ थे। वे वेदविरुद्ध बातों का उपदेश नहीं कर सकते, अतः यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि उपर्युक्त श्लोक अवतारवाद के प्रचलित हो जाने के पश्चात् गीता में प्रक्षिप्त किये गये हैं।

ऊपर उद्धृत द्वितीय श्लोक में अवतार धारण करकने के तीन कारण बताये गये हैं–

१. साधुओं की रक्षा, २. दुष्टों को दण्ड, ३. धर्म की स्थापना। यदि इन तीनों हेतुओं पर विचार किया जाए तो प्रतीत होगा कि जितने भी अवतार हुए उनमें

से एक ने भी इन कार्यों को पूरा नहीं किया।

विष्णु के जितने भी अवतार हुए वे सभी छली और कपटी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जन्म छल और कपट के लिए ही हुआ था अथवा छल और कपट का विभाग विष्णुजी को सौंपा हुआ था।

मोहिनी अवतार ने कौन-से साधुओं की रक्षा की थी? कौन-से दुष्टों को दण्ड दिया और कौन-से धर्म की स्थापना की? हाँ, उसे देखकर शिवजी का वीर्यपात अवश्य हो गया था।

वामन भी विष्णु का अवतार माने जाते हैं। उन्होंने बलि के साथ छल करने के अतिरिक्त कौन-सा उत्तम कर्म किया?

परशुराम भी सनातनियों के अवतार हैं। परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया। क्या अवतार इसीलिए होता है? बुद्ध भी पौराणिकों के अवतार माने जाते हैं। उन्होंने वेद और ईश्वर को मानने से ही इन्कार कर दिया। इसी प्रकार की करतूतें अन्य अवतारों की भी हैं, जिन्हें हमने अन्यत्र विस्तारपूर्वक लिख दिया है, अतः यहाँ नहीं लिखते।

जब हम पूछते हैं कि ईश्वर अवतार क्यों लेता है तो पौराणिक कहते हैं कि दुष्टों का संहार करने के लिए ईश्वर अवतार धारण करता है। इस उत्तर को सुनकर हँसी आती है। किसी भी वस्तु का बनाना कठिन होता है और बिगाड़ना सरल। जो ईश्वर बिना शरीर धारण किये रावण, कंस, जरासन्ध, हिरण्यकश्यपु आदि का निर्माण कर सकता है, क्या बिना शरीर धारण किये वह उनका संहार नहीं कर सकता?

कहते हैं कि प्रह्लाद की रक्षा के लिए और हिरण्यकश्यपु के विनाश के लिए ईश्वर खम्भा फाड़कर प्रकट हो गया। हम पूछना चाहते हैं कि ईश्वर प्रह्लाद के भीतर था या नहीं? ईश्वर हिरण्यकश्यपु के हृदय में था या नहीं? उस सभा में सर्वत्र था या नहीं? जब ईश्वर सर्वव्यापक है, अणु-अणु और कण-कण में विद्यमान है तो उसका खम्भे से प्रकट होना कैसे सम्भव हो सकता है? प्रकट तो वह हो सकता है जो एकदेशीय हो। जब ईश्वर हिरण्यकश्यपु के हृदय में भी था तो अन्दर से ही उसके हृदय को विदीर्ण कर सकता था, उसे अवतार लेने की आवश्यकता क्या थी?

एक और बिडम्बना देखिए। सत्ययुग में चार अवतार हुए, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलियुग में अभी तक एक भी अवतार नहीं हुआ। पौराणिकों के अनुसार कलियुग सबसे बुरा है, अतः कलियुग में सबसे अधिक अवतार होने चाहिए थे और सत्ययुग में जहाँ धर्म-ही-धर्म था, अधर्म का लेश भी नहीं था, उस समय एक भी अवतार नहीं होना चाहिए था।

एक और मज़ेदार बात देखिए। राम और परशुराम दोनों अवतार एक ही समय में हो गये। दोनों युद्ध करने के लिए भी तैयार हो गये, अवतार अवतार को न पहचान सका! श्रीकृष्ण, बलराम और व्यास तीनों अवतार एक ही समय में हो गये। उस समय इतने अवतारों की क्या आवश्यकता थी?

सच्ची बात तो यह है कि अवतारवाद एक ढकोसला है, एक पाखण्ड है। अवतारवाद की पोषक पुराणों को उठाकर देखिए, सत्ययुग, त्रेता और द्वापर

में जब अधर्म बहुत ही न्यून था, पृथिवी ने तनिक पुकार की और उसका भार उतारने के लिए ईश्वर तुरन्त अवतरित हो गये, परन्तु यदि हम आज की अवस्था का अवलोकन करें तो वर्त्तमान युग में सूर्योदय से पूर्व सैकड़ों गौओं और सहस्रों अन्य पशुओं के गले पर आरा फेर दिया जाता है। आज बलात्कार की घटनाओं से समाचार-पत्रों के पृष्ठ रंगे रहते हैं। प्रत्येक वस्तु में मिलावट है, चोरबजारी, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का बाज़ार गरम है। सज्जन कष्ट में हैं और दुष्ट गुलच्छर्रे उड़ा रहे हैं, परन्तु भगवान् क्षीरसागर में लक्ष्मी के साथ विहार कर रह हैं। आज की परिस्थितियाँ पहले से बहुत भयंकर हैं। हम पूछना चाहते हैं कि अब ईश्वर अवतार क्यों नहीं लेता?

१५ अगस्त १९४७ को भारत दो खण्डों में विभाजित हो गया। उस समय जिस दानवता का ताण्डव नृत्य हुआ उसे लिखते हुए लेखनी भी काँपती और थर्राती है। छोटे-छोटे दुधमुँहे बच्चों को बेसन में लपेट-कर तेल के खौलते कड़ाहे में डाला गया। बच्चों को आकाश में उछालकर भालों की नोक पर लिया गया। स्त्रियों के स्तनों को काटा गया। माता-पिता के समक्ष उनकी पुत्रियों से बलात्कार किया गया, उन्हें नंगा करके सड़कों और बाजारों में उनके जुलूस निकाले गये। यह सब-कुछ हुआ, परन्तु ईश्वर ने अवतार नहीं लिया। मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक पूछना चाहता हूँ, जब ऐसी भीषण परिस्थिति में ईश्वर ने अवतार नहीं लिया तो फिर उसका अवतार कब होगा?

हे भारतवासियो! हम घोषणापूर्वक कहना चाहते

हैं कि अवतारवाद एक धोखा, पाखण्ड और दम्भ है। ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता। अवतार से रक्षा की आशा करना दुराशामात्र है। यदि आप चाहते हैं कि देश उन्नत हो, यदि आप चाहते हैं कि आप अपने पूर्व गौरव और वैभव को पुनः प्राप्त करें, यदि आप चाहते हैं कि आपका देश समृद्ध हो, यदि आप चाहते हैं कि देश से दुराचार और पाखण्ड समाप्त हो तो ईश्वर के अवतार धारण करने की आशा छोड़ दीजिए। ईश्वर अवतार नहीं लेता। आप स्वयं अपने जीवन में आत्मविश्वास, ज्येति और जागृति उत्पन्न कीजिए। अपने बाहुबल का आश्रय लेकर घोर उद्योग के लिए कमर कसकर खड़े हो जाइए।

आपसी फूट

भारत की अवनति के जहाँ और अनेक कारण हैं वहाँ एक कारण परस्पर की फूट भी है। यदि भारतीय राजाओं में, वीर क्षत्रियों में परस्पर फूट न होती तो आज भारत का मानचित्र कुछ और ही होता। आपस की फूट ने भारतवर्ष को पराधीन और परतन्त्र बना दिया।

जब तक सूर्य-चन्द्र आकाश में स्थित हैं, तब तक जयचन्द के देशद्रोह को कौन भुला सकता है? जयचन्द ने मुहम्मद गोरी के साथ मिलकर पृथ्वीराज चौहान के साथ विश्वासघात न किया होता तो क्या मुसलमान भारत में अपने पैर जमा सकते थे? हे जयचन्द! देशद्रोह करके तुझे क्या मिला? कुछ भी तो नहीं? दूसरे ही वर्ष उसी ग़ोरी ने जयचन्द पर आक्रमण करके कन्नौज की ईंट-से-ईंट बजा दी।

मानसिंह ने अपनी फूफी का विवह अकबर के साथ कर दिया और प्रताप का साथ छोड़कर अकबर से मिल गया। इतना ही नहीं, उसने एक बहुत बड़ी सेना लेकर प्रताप के ऊपर आक्रमण भी किया। महाराणा प्रताप का छोटा भाई शक्तिसिंह भी अकबर से जा मिला। महाराणा प्रताप, शक्तिसिंह और मानसिंह तीनों मिलकर अकबर के विरुद्ध मोर्चा लेते तो अकबर को भारत से भागकर ही मुँह छिपाना पड़ता और देहली का सिंहासन राजपूतों के अधिकार में होता।

भारतीय राजाओं की फूट की तो यह अवस्था थी कि जब कोई विदेशी किसी वीर क्षत्रिय पर आक्रमण करता था तो दूसरे राजा मौन बैठे हुए तमाशा देखते थे। प्रत्येक राजा यही सोचता था कि यह आक्रमण मुझपर थोड़े ही हो रहा है यह तो मेरे पड़ौसी पर है, जब मुझपर शत्रु आक्रमण करेगा तब देखा जाएगा। परिणामस्वरूप एक-एक करके सभी राजा परास्त हुए। काश! यदि वीर क्षत्रिय धर्मराज युधिष्ठिर के आदर्श को अपने समक्ष रख लेते तो हमारी यह दुर्गति न होती।

क्या था धर्मराज युधिष्ठिर का आदर्श! पाँचों पाण्डव द्रौपदी के साथ वनों में भ्रमण कर रहे थे। उनका समाचार जानकर और उन्हें चिढ़ाने के लिए दुर्योधन ने ठाठ-बाट से, शाही वेश में उनके पास जाने का निश्चय किया, परन्तु मार्ग में चित्रसेन गन्धर्व द्वारा उसे बन्दी बना लिया गया। जब युधिष्ठिर को इस घटना का पता लगा तो उन्होंने भीम और अर्जुन को आदेश दिया कि जाकर दुर्योधन को मुक्त कराओ।

भीम ने कहा—"हमें क्या आवश्यकता है कि हम उसे छुड़ाने जाएँ? वह हमें चिढ़ाने आया था अब अपने किये का फल पा रहा है, उसे वहीं सड़ने दो।" तब धर्मराज युधिष्ठिर ने उसे समझाते हुए कहा—

परस्परं विवादे तु वयं पञ्च शतं च ते।
अन्यैः सह विवादे तु वयं पञ्चशतोत्तरम्॥

—महा० वनपर्व

यदि हम लोगों की आपस में लड़ाई हो तो हम पाँच हैं और वे सौ हैं, परन्तु यदि किसी दूसरे के साथ युद्ध हो तो हम एक-सौ-पाँच हैं।

इस आदर्श को सम्मुख रखकर यदि क्षत्रिय वीर लड़े होते तो भारत को दुर्गति के ये दिन न देखने पड़ते।

परस्पर की फूट का कैसा दुष्परिणाम होता है इस विषय में 'कथा-सरिता-सागर' में एक बहुत ही मार्मिक घटना का उल्लेख है। पाठकों के लाभ एवं मनोरंजनार्थ हम उसे यहाँ देते हैं।

पुत्रक नाम का एक व्यक्ति जंगल में घूम रहा था। घूमते-घूमते एक दिन उसने एक स्थान पर दो पुरुषों को लड़ते हुए देखा। पुत्रक ने उनसे लड़ने का कारण पूछा तो वे बोले—"हम मयासुर के पुत्र हैं और अपने पिता की सम्पत्ति के लिए लड़ रहे हैं। जो हममें से विजयी होगा, वही उस सम्पत्ति का स्वामी बनेगा।"

पुत्रक ने पूछा—"आखिर ऐसी कौन-सी सम्पत्ति है, जिसके लिए आप एक-दूसरे के प्राण लेने पर उतारू हैं।" यह सुन उन्होंने दूर रक्खे हुए खड़ाओं के एक जोड़े, एक डण्डे और एक कटोरे की ओर

संकेत किया और कहा—"यही वह सम्पत्ति है, जिसके लिए हम लड़ रहे हैं।" पुत्रक ने कहा—"इन साधारण-सी वस्तुओं के लिए लड़ना उचित नहीं है।" तब मयासुर के पुत्रों ने बताया कि यह साधारण सम्पत्ति नहीं है। इन खड़ाओं को पहनकर मनुष्य आकाश में गमन कर सकता है। इस डण्डे पर जो कुछ लिखा जाएगा वह सत्य हो जाएगा और जिस वस्तु की इच्छा की जाए वह इस कटोरे में उपस्थित हो जाती है।

पुत्रक ने कहा—"कुछ भी हो, इनके लिए आपस में लड़ना ठीक नहीं। तुम दोनों दौड़ लगाओ, जो तुम दोनों में आगे निकलेगा वही जीता हुआ माना जाएगा और ये तीनों वस्तुएँ उसे ही मिल जाएँगी।"

पुत्रक की सलाह मानकर दोनों ने दौड़ना आरम्भ कर दिया। पीछे से पुत्रक खड़ाओं को पहन तथा डण्डा और कटोरा हाथ में लेकर आकाश में उड़ गया।

हमें यहाँ कहानी के सत्यासत्य के विवेचन में नहीं जाना। हमें तो केवल कहानी से मिलनेवाली शिक्षा पर ध्यान देना है। इस घटना से जो शिक्षा मिलती है, उसे महर्षि दयानन्द के शब्दों में यूँ व्यक्त किया जा कसता है—

"जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है।"

—सत्यार्थप्रकाश दशमसमुल्लासः

राजपूत परस्पर लड़ते रहे। परिणामस्वरूप मुसलमान और ईसाई हमारे शासक बन गये।

आपस की फूट से नाश सुनिश्चित है। वेद कहता है—

मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्।

—अथर्व० ६।३२।३

परस्पर लड़नेवाले मृत्यु का ग्रास बनते हैं, नष्ट और भ्रष्ट हो जाते हैं।

अन्त में महर्षि दयानन्द के कुछ शब्द स्मरण आ रहे हैं, जिनके लिखने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता—

"आपस की फूट से कौरव-पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख-सागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन, गोत्र-हत्यारे, स्वदेशविनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में आर्यलोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों से नष्ट हो जाए।

—सत्यार्थप्रकाश, दशमसमुल्लासः

साधुओं की निकम्मी फ़ौज

भारत की अवनति का एक और कारण है साठ लाख साधुओं की निकम्मी फ़ौज। वैदिक धर्म में संन्यासियों का स्थान बहुत ऊँचा और सम्मानप्रद है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में "जैसे शरीर में सिर की आवश्यकता है, वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है", परन्तु आज यह शिरोमणि आश्रम सबसे अधिक दूषित और विकृत हो गया है। आज कहाँ हैं सच्चे संन्यासी? आज के संन्यासियों की अवस्था तो तुलसीदासजी की इस चौपाई से मिलती-जुलती है—

नारि मुई घर सम्पत्ति नासी।
मूँड मुँडाय भये संन्यासी।

आज संन्यासियों का स्थान टकापन्थी, स्वार्थी, पदलोलुप, ढोंगी, दम्भी और पाखण्डियों ने ले-लिया है। आज का संन्यासी सर्वत्यागी होने के स्थान पर सर्वग्राही बन गया है। आज का संन्यासी लोकोद्धार के लिए, देश के कल्याण के लिए, जाति को सन्मार्ग पर लाने के लिए संन्यासी नहीं बनता, वह संन्यासी बनता है अपने घरवालों का पालन-पोषण करने के लिए, महल और कोठियाँ बनवाने के लिए, अपनी कुण्ठित वासनाओं को शान्त करने के लिए। आज के संन्यासियों के जीवन का तनिक निकट से अध्ययन करें तो पता चलेगा कि किसी ने पच्चीस लाख रुपया जमा किया हुआ है तो किसी ने पचास लाख तथा किसी ने एक करोड़ और किसी ने आश्रम के रूप में करोड़ों और अरबों की सम्पत्ति इकट्ठी की हुई है। तनिक निकल जाइए हरद्वार और ऋषिकेश की ओर, आपको ऐसे सैकड़ों ढोंगी और पाखण्डी साधु मिल जाएँगे। ये ढोंगी और पाखण्डी साधु संसार को उपदेश देते हैं-

रूखी सूखी खायके ठण्डा पानी पीव।
देख पराई चूपड़ी मत ललचावे जीव॥

जिन गृहस्थों को अपने बच्चों का पालन और पोषण करना होता है, अपनी रीढ़ की हड्डी को सीधा करके ८-१० घण्टे प्रतिदिन दफ्तरों या दुकानों में काम करना होता है वे तो रूखी-सूखी खाकर निर्वाह करें और जो निठल्ले पड़े रहते हैं, वे खूब दूध-मलाई छकें!

क्या सुन्दर उपदेश है!

इन पाखण्डी साधुओं के जीवन का इनके साथ रहकर निरीक्षण किया जाए तो पाता चलेगा कि संसार को ईश्वर-भक्ति का उपदेश देनेवाले ये दम्भी और पाखण्डी स्वयं एक मिनट भी उपासना नहीं करते। प्रातः उठते ही शौच से निवृत्त हो तेल की मालिश कराते हैं, फिर स्नान कर गर्मियों में बादाम की ठण्डाई पर हाथ साफ़ करते हैं। सर्दियों में बादाम का हलुआ और बादाम-पाक खाते हैं। दोपहर को ऐसा बढ़िया भोजन खाते हैं कि अच्छे-अच्छे गृहस्थियों को भी प्राप्त न होता होगा। दो घण्टा पश्चात् मौसमी और सन्तरों का रस पीते हैं। शाम को फिर भोजन और रात्रि को दूध। ये तथाकथित संन्यासी डण्ड पेलकर साँड बन रहे हैं और देश पर भार बन रहे हैं। ये ढोंगी साधु दिनभर पड़े हुए खाटों को तोड़ते हैं, न लिखना, न पढ़ना, न स्वाध्याय, न प्रवचन।

इन संन्यासियों के मन्दिरों और मठों में व्यभिचार होता है। युवतियों को झाँसे देकर उनका शील भंग किया जाता है। कलकत्ता के हीरालाल गोयन्दका ने जो व्यभिचार किये थे वे किससे छिपे हैं? अभी कुछ समय पूर्व ऋषिकेश के एक महन्त के कमरे में देखा गया कि महन्तजी झूले में झूल रहे हैं। झूले के पास ५-७ युवतियाँ बैठी हुई हैं, उन सभी ने मेक-अप किया हुआ था और साधुजी आनन्द की हिलोरें ले-रहे थे।

हे महन्तो और मठाधीशो! मैं आपसे पूछना चाहता हूँ—यदि आपको ये भवन ही खड़े करने थे, यदि सम्पत्ति ही संगृहीत करनी थी, यदि गुलछर्रे ही उड़ाने थे तो

आपने संन्यास क्यों लिया? यह काम तो तुम गृहस्थाश्रम में रहकर भी कर सकते थे, फिर इसे त्यागने की क्या आवश्यकता थी?

दीपावली के अवसर पर दिल्ली और नई दिल्ली के मन्दिरों में इतनी मिठाई चढ़ती है कि मिठाइयों के पहाड़ लग जाते हैं, दूसरी ओर गरीब बच्चे मिठाई के एक कण के लिए रोते और बिलखते हैं। दीपावली के दिन ही क्या साधारण दिनों में भी नई दिल्ली के दो मन्दिरों में इतनी मिठाई चढ़ती है कि पूजारी और उसके बच्चे उस मिठाई को खा नहीं पाते। वह मिठाई पड़ी-पड़ी सूखती है अथवा उसे कुत्तों को फेंका जाता है।

ये शंकराचार्य और मण्डलेश्वर भी देश के लिए एक भीषण सङ्कट हैं। ये सोने के सिंहासनों पर बैठते हैं। हे मण्डलेश्वरो! लोगों को तुम समभाव का उपदेश देते हो, संसार के सभी प्राणियों में एकात्मदर्शन की बात करते हो और स्वयं संन्यासियों से अपनी पालकी उठवाते हो। तुम्हें लज्जा आती है या नहीं?

इन महन्तों, मठाधीशों और मण्डलेश्वरों के अतिरिक्त देश में साठ लाख साधुओं की निकम्मी फ़ौज विद्यमान है। इनको साधु कहना तो वस्तुतः 'साधु' शब्द का ही अपमान करना है। ये तो स्वादु हैं, ठग है, भिखमंगे हैं। लीजिए, इन साधुओं का स्वादुपन देखिए-

एक साधु एक घर में पहुँचकर कहने लगा-"माता! आज तो साधु की इच्छा दूध पीने की है, एक सेर पक्का दूध पिला दे।" स्त्रियों में साधुओं के प्रति भक्तिभाव होता ही है। माता एक बर्तन लेकर अहारे में रक्खी हाँडी से दूध डालने लगी तो उसके साथ

मलाई भी आने लगी। माता उस मलाई को बर्तन में गिरने से रोकने लगी, तो साधुजी बोले—"माता! मलाई भी आने दे, हमें स्वाद से क्या मतलब, हम तो मलाई-सहित पी लेंगे।" यह है आज के साधुओं का स्वादुपन!

इनकी विद्वत्ता और योग्यता कितनी है, जहाँ तक साधारण साधुओं की बात है, उनकी योग्यता का पता तो निम्न चित्रण से लग जाएगा—

एक सद्गृहस्थ ने किसी साधु से कहा—"महाराज! मेरे बच्चे को गायत्री का उपदेश कर दो।"

साधु बोला—"ना महाराज।"

"अच्छा यदि गायत्री का उपदेश नहीं कर सकते तो मेरे बच्चों को कुछ हिन्दी ही पढ़ा दिया करें," गृहस्थी ने विनयपूर्वक कहा।

साधु बोला—"ना महाराज! यदि पढ़ा होता तो संन्यासी क्यों बनता, कमाकर खाता।"

गृहस्थी ने पूछा—"साधुजी! खीर खाओगे?"

साधुजी तपाक से बोले—"हाँ महाराज।"

अब जिन साधुओं को बहुत बड़ा विद्वान् समाझा जाता है उनकी योग्यता भी सुन लीजिए। करपात्रीजी और कृष्णबोधाश्रम का कहना है कि "स्त्रियों को गायत्री मन्त्र का जप नहीं करना चाहिए। स्त्री यदि गायत्री का जप करेगी तो विधवा हो जाएगी।" ऐसा ऊटपटाँग व्याख्यान सुनकर एक देवी करपात्रीजी के पास पहुँची और पूछा—"गायत्री स्त्री थी या पुरुष?" करपात्रीजी ने कहा—"स्त्री।" तब उस देवी ने कहा—"तो वह स्त्रियों में बैठकर प्रसन्न होगी या पुरुषों में?" करपात्रीजी देवी का मुँह ताकते रह गये, कोई उत्तर

न बन पड़ा। आर्यसमाज के अधिकारियों ने शास्त्रार्थ का चैलैञ्ज दिया, जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया। आज साधुओं के स्थान पर दम्भी, पाखण्डी और ठग अधिक हैं। ये अनेक प्रकार के बहानों से लोगों को ठगते हैं। कोई अपना हाथ ऊपर उठाकर खड़ा हो जाता है तो कोई शूलों के ऊपर बैठता है और कोई पञ्चाग्नि तापता है। इस प्रकार लोगों की आँखों में धूल झोंककर ये लोग धन बटोरते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। ये लोग कहीं सोना बनाने के बहाने, कहीं चाँदी बनाने के बहाने, कही रुपया दुगुना करने के बहाने लोगों को ठग ले-जाते हैं। कहीं युवतियों को और कहीं स्त्रियों को भगाते हैं, कहीं बच्चों को उठाकर ले-जाते हैं।

देश में इस प्रकार के साठ लाख निकम्मे और निठल्ले साधुओं का जमघट है और यह संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। इन साधुओं पर होनेवाला वार्षिक व्यय लगभग ४०० करोड़ रुपये है, अर्थात् प्रतिदिन एक करोड़ रुपये से भी अधिक इनपर खर्च होता है फिर देश का सत्यानाश और सर्वनाश क्यों न हो?

उपसंहार

आज देश की अवस्था बहुत ही भीषण और विकट है। एक ओर चीन हमारी २२ सहस्त्र वर्गमील भूमि को हड़प गया, दूसरी ओर पाकिस्तान सदा युद्ध के लिए तत्पर रहता है, तीसरी ओर भारत के मुसलमान भारत में रहते हुए, भारत का खाते हुए प्रातः उठकर और जामा मस्जिद पर खड़े होकर कहता है—"या अल्ला! पाकिस्तान को सुररिक्षत रखना।" कुछ मुसलमान

भारत में रहते हुए अरब के गीत गाते हैं–

मेरे मौला मदीने बुला ले मुझे।

और–

अब तो यह तूती अरब के चमन में रहेगी।

मैं पूछता हूँ, अरब में चमन कहाँ है? और मदीने में जाकर क्या धूल फाँकनी है। यहाँ का मुसलमान रहता भारत में है, परन्तु शुभ चाहता है अरब और पाकिस्तान का। क्या खूब!

चौथी ओर नाना प्रकार के मत और सम्प्रदाय हैं। कहीं मूर्त्तिपूजा हमारी जड़ों को खोखला कर रही है तो कहीं फलित ज्योतिष और दिशाशूल हमें गढ़े में धकेल रहे हैं। इसी प्रकार परस्पर की फूट, अवतारवाद और साठ लाख साधुओं की यह निकम्मी फ़ौज देश के लिए सिर-दर्द बनी हुई है।

ऐसी भयंकर हैं परिस्थितियाँ, परन्तु इन भयंकर परिस्थितियों में भी मुझे मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ स्मरण आती हैं–

उज्ज्वल अतीत था भविष्य भी महान् है।
सँभल जाए यदि वह जोकि वर्त्तमान है।।

जैसा हमने पुस्तक के आरम्भ में प्रतिपादित किया है भारत का अतीत महान् था। भारत जगद्गुरु था। भारत का गौरव जगद्विख्यात था। जब मैं भविष्य की ओर देखता हूँ तो वह भी शानदार दिखाई देता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम सर्वनाशकारी, आँखों को चुंधियानेवाली पाश्चात्य संस्कृति से बचें तथा अपनी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की ओर लौटें। आज सारे संसार की आँखें हमारी ओर लगी हुई हैं।

सुनिए, विदेशी हमारे विषय में क्या कहते हैं–

पहले हार्वर्ड विश्वविद्यालय में भारतीय दर्शन नहीं पढ़ाये जाते थे। जब वहाँ के प्राध्यापकों से भारतीय दर्शन को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के लिए कहा गया तो प्रो० थॉमसन ने कहा–"पहले मैं स्वयं भारतीय दर्शनों को पढ़कर देखूँगा, फिर उसे पाठ्यक्रम में समाविष्ट करने पर विचार किया जाएगा।" प्रो० थॉमसन ने उपनिषदों को पढ़ा और पढ़कर उसने कहा–Upnishadas are the greatest books of the world. अर्थात् उपनिषद् संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। थॉमसन महोदय को उपनिषदों का अंग्रजी अनुवाद पढ़कर शान्ति नहीं मिली। उपनिषदों को मूलरूप में पढ़ने के लिए वे वाराणसी पधारे। जिस समय वे अध्ययन करके लौटने लगे तो एक सभा में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा–

"I go affirmed with the opinion that the Upnishadas are the greatest books of the world, but nowhere I have found the blood of ancient Rishis in the veins of the present generation, they have begun to ape the Western civilization."

"उपनिषद् संसार के श्रेष्ठतम ग्रन्थ हैं"–मैं अपने इसी निश्चय के साथ वापस लौट रहा हूँ, परन्तु मुझे भारत की वर्त्तमान सन्तति की रगों में कहीं भी ऋषियों का रक्त दिखाई नहीं दिया। हाँ, उन्होंने बन्दरों की भाँति पाश्चात्य सभ्यता की नकल शुरू कर दी है।"

हे भारतवासियो! हे भारतमाता के सपूतो! ओ भारत के लाडलो! हे भारत के कर्णधारो! ओ ऋषि-मुनियों की सन्तानों! अपने प्राचीन गौरव और वैभव को याद

कर उसे अपना आदर्श बनाओ और उसी को सम्मुख रखकर आगे बढ़ो। किसी कवि ने कहा है—

यूनानो मिस्त्र रोमाँ सब मिट गये जहाँ से।
बाकी मगर है अब तक नामो-निशाँ हमारा।।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे-जमाँ हमारा।।

'वह कुछ बात' क्या है? वह कुछ बात है हमारी सभ्यता और संस्कृति। हमारी संस्कृति विश्व की प्रथम संस्कृति है, आदिम संस्कृति है। जब तक हमारी संस्कृति और सभ्यता हमारे समक्ष रहेगी, कोई देश, कोई जाति और कोई सम्प्रदाय हमें नष्ट नहीं कर सकता। निस्सन्देह परिस्थितियाँ भयंकर है, परन्तु निराश और हताश होने की आवश्यकता नहीं है। सूर्य बादलों में छिप जाता है, परन्तु थोड़ी देर में बादल तितर-बितर हो जाते हैं और सूर्य फिर उसी प्रखरता से चमकने लगता है। कभी-कभी सूर्य को ग्रहण लग जाता है, परन्तु थोड़ी देर में उग्रह होकर सूर्य पुनः संसार को आलोक देने लगता है। ठीक इसी प्रकार भारत के दिन फिरेंगे। जब वैदिक धर्म का प्रचार होगा तो मूर्त्तिपूजा, फलित-ज्योतिष, ग्रह और दिशाशूल तथा अवतारवाद आदि अनार्ष सिद्धान्तों का लोप होगा और भारत अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करेगा। फिर सारे संसार से एक आवाज़ उठेगी—

जो बोले सो अभय। वैदिक धर्म की जय।।

